बी०टी०सी० प्रथम सेमेस्टर

सामान्य विषय –**edu 01**

बाल विकास एवं सीखने की प्रक्रिया

राज्य शिक्षा संस्थान, उ0प्र0,
इलाहाबाद

बी0टी0सी0 प्रथम सेमेस्टर

मुख्य संरक्षक : **सचिव श्री नीतीश्वर कुमार** बेसिक शिक्षा परिषद, उ0प्र0, लखनऊ

संरक्षक : **राज्य परियोजना निदेशक,** उ0प्र0, सभी के लिए शिक्षा परियोजना परिषद, लखनऊ

निर्देशन : **श्री सर्वेन्द्र विक्रम बहादुर सिंह,** निदेशक, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, उ0प्र0

समन्वयन : **श्री राम नारायण विश्वकर्मा प्राचार्य,** राज्य शिक्षा संस्थान, उ0प्र0, इलाहाबाद

परामर्श : **श्री अजय कुमार सिंह, संयुक्त निदेशक** (एस0एस0ए0) राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, उ0प्र0, लखनऊ

श्रीमती ललिता प्रदीप, प्राचार्य, डायट, लखनऊ

श्रीमती दीपा तिवारी, वरिष्ठ प्रवक्ता, डायट, लखनऊ

श्री रमेश तिवारी, सहायक उप निदेशक, राज्य शिक्षा संस्थान, उ0प्र0, इलाहाबाद

लेखक : श्रीमती सुषमा यादव, श्रीमती नीलम मिश्रा, श्रीमती मंजुलेश विश्वकर्मा शोध प्राध्यापक, डॉ0 संध्या सिंह, श्री रवीन्द्र प्रताप सिंह, श्रीमती परमजीत गौतम, श्रीमती अस्मत नीलो अन्सारी, श्रीमती रत्ना यादव, श्रीमती रश्मि चौरसिया, डॉ0 श्रीमती चन्दना मुखर्जी, श्रीमती मीरा अस्थाना, श्री संजय यादव, श्री नितिन अरोरा, श्रीमती अर्चना मिश्रा, श्री पंकज त्रिपाठी, डॉ0 (श्रीमती) वन्दना प्रवीन, डॉ0 राम निहोर सिंह

कम्प्यूटर कम्पोजिंग : मनोज गोयल, राजेश कुमार यादव

कक्षा शिक्षण : विषयवस्तु–बाल विकास एवं सीखने की प्रक्रिया

बाल विकास :–

- ❖ बाल विकास का अर्थ, आवश्यकता तथा क्षेत्र
- ❖ बाल विकास की अवस्थाएं (शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था) एवं उनके अन्तर्गत होने वाले विकास
- ❖ शारीरिक विकास
- ❖ मानसिक विकास
- ❖ संवेगात्मक विकास
- ❖ भाषा विकास–अभिव्यक्ति क्षमता का विकास
- ❖ सृजनात्मकता एवं सृजनात्मक क्षमता का विकास
- ❖ व्यक्तित्व का विकास– अर्थ, प्रकार
- ❖ व्यक्तित्व परीक्षण के तरीके एवं समायोजन के उपाय
- ❖ वैयक्तिक भिन्नता– अर्थ, कारक एवं महत्व
- ❖ कल्पना, चिन्तन और तर्क का विकास
- ❖ बाल विकास के आधार एवं उनको प्रभावित करने वाले कारक
- ❖ वंशानुक्रम
- ❖ वातावरण (पारिवारिक, सामाजिक, विद्यालयी, संचार माध्यम)

अधिगम (सीखना) का अर्थ तथा सिद्धान्त :–

- ❖ अधिगम का अर्थ प्रभावित करने वाले कारक
- ❖ अधिगम की प्रभावशाली विधियाँ
- ❖ अधिगम के नियम–थार्नडाइक के सीखने के मुख्य नियम एवं सीखने में उनका महत्व
- ❖ अधिगम के प्रमुख सिद्धान्त तथा कक्षा शिक्षण में इनकी व्यवहारिक उपयोगिता
- ❖ थार्नडाइक का प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त
- ❖ पैवलव का सम्बद्ध प्रतिक्रिया का सिद्धान्त
- ❖ स्किनर का क्रिया प्रसूत अधिगम सिद्धान्त

- ❖ कोहलर का सूझ या अन्तर्दृष्टि का सिद्धान्त
- ❖ प्याजे का सिद्धान्त
- ❖ व्योगास्की का सिद्धान्त
- ❖ सीखने का वक्र– अर्थ एवं प्रकार सीखने में उनका महत्व
- ❖ पठार–अर्थ, कारण और निराकरण

❖ **अभिप्रेरणा**

- ❖ अर्थ प्रकार एवं महत्व
- ❖ ध्यान, अर्थ, प्रकार ध्यान को प्रभावित करने वाले कारक
- ❖ रुचि– अर्थ, प्रकार तथा बच्चों के रुचि का परीक्षण
- ❖ स्मृति– अर्थ, प्रकार तथा अच्छी स्मृति के प्रभावी कारक
- ❖ विस्मरण– अर्थ, कारण एवं महत्व
- ❖ सांख्यिकी– अर्थ, महत्व एवं आंकड़ों का रेखा चित्रीय निरूपण।
- ❖ माध्य, माध्यिका एवं बहुलक

बाल विकास का अर्थ, आवश्यकता तथा क्षेत्र

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- बाल विकास का अर्थ
- बाल विकास की आवश्यकता
- बाल विकास के क्षेत्र

विकास एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है। जो संसार के प्रत्येक जीव में पाई जाती है। विकास की यह प्रक्रिया गर्भधारण से लेकर मृत्यु पर्यन्त किसी न किसी रूप में चलती रहती है। इसकी गति कभी तीव्र और कभी मन्द होती है। मानव विकास का अध्ययन मनोविज्ञान की जिस शाखा के अन्तर्गत किया जाता है, उसे बाल–मनोविज्ञान कहा जाता है परन्तु अब मनोविज्ञान की यह शाखा 'बाल–विकास' कही जाती है। मनोविज्ञान की इस नवीन शाखा का विकास पिछले पचास वर्षों में सर्वाधिक हुआ है। वर्तमान समय में 'बाल विकास' के अध्ययनों में मनोवैज्ञानिकों की रूचि दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है क्योंकि इस दिशा में हुए अध्ययनों ने बालकों के जीवन को सुखी, समृद्धिशाली और प्रशंसनीय बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

बाल विकास का अर्थ

बाल विकास, मनोविज्ञान की एक शाखा के रूप में विकसित हुआ है। इसके अन्तर्गत बालकों के व्यवहार, स्थितियाँ, समस्याओं तथा उन सभी कारणों का अध्ययन किया जाता है, जिनका प्रभाव बालक के व्यवहार पर पड़ता है। वर्तमान युग में अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं आर्थिक कारक मानव तथा उसके परिवेश को प्रभावित कर रहे हैं। परिणामस्वरूप बालक, जो भावी समय की आधारशिला होता है, वह भी प्रभावित होता है।

बाल मनोविज्ञान की परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

1. क्रो और क्रो के अनुसार– ''बाल मनोविज्ञान वह वैज्ञानिक अध्ययन है जो व्यक्ति के विकास का अध्ययन गर्भकाल के प्रारम्भ से किशोरावस्था की प्रारम्भिक अवस्था तक करता है।''

2. जेम्स ड्रेवर के अनुसार– ''बाल मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसमें जन्म से परिपक्वावस्था तक विकसित हो रहे मानव का अध्ययन किया जाता है।''

3. थॉम्पसन के शब्दों में– '' बाल–मनोविज्ञान सभी को एक नयी दिशा में संकेत करता है। यदि उसे उचित रूप में समझा जा सके तथा उसका उचित समय पर उचित ढंग से विकास हो सके तो प्रत्येक बालक एक सफल व्यक्ति बन सकता है।''

4. हरलॉक के अनुसार– '' आज बाल–विकास में मुख्यतः बालक के रूप व्यवहार, रूचियों और लक्ष्यों में होने वाले उन विशिष्ट परिवर्तनों की खोज पर बल दिया जाता है, जो उसके एक विकासात्मक अवस्था से दूसरी विकासात्मक अवस्था में पदार्पण करते समय होते हैं। बाल–विकास में

यह खोज करने का भी प्रयास किया जाता है। कि यह परिवर्तन कब होते हैं, इसके क्या कारण हैं और यह वैयक्तिक हैं या सार्वभौमिक।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि बाल विकास मनोविज्ञान की वह शाखा है, जिसमें विभिन्न विकास अवस्थाओं में मानव के व्यवहार में होने वाले क्रमिक परिवर्तनों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

बोध प्रश्न

- बाल विकास की कोई एक परिभाषा लिखिए। .....
  .....।

बाल विकास की आवश्यकता

बाल विकास अनुसन्धान का एक क्षेत्र माना जाता है। बालक के जीवन को सुखी और समृद्धिशाली बनाने में बाल–मनोविज्ञान का योगदान प्रशंसनीय है। मनोविज्ञान की इस शाखा का केवल बालकों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध है, जो बालकों की समस्याओं पर विचार करते हैं और बाल मनोविज्ञान की उपयोगिता को स्वीकार करते हैं। समाज के विभिन्न लोग बाल–मनोविज्ञान से लाभान्वित हो रहे हैं, जैसे– बालक के माता–पिता तथा अभिभावक, बालक के शिक्षक, बाल सुधारक तथा बाल– चिकित्सक आदि। बाल मनोविज्ञान के द्वारा हम बाल– मन और बाल– व्यवहारों के रहस्यों को भली–भाँति समझ सकते है। बाल मनोविज्ञान हमारे सम्मुख बालकों के भविष्य की एक उचित रूपरेखा प्रस्तुत करता है। जिससे अध्यापक एवं अभिभावक बच्चे में अधिगम की क्षमता का सही विकास कर सकते हैं। किस अवस्था में बच्चे की कौन–सी क्षमता का विकास कराना चाहिए, इसका उचित प्रयोग अवस्थानुसार विकास के प्रारूपों को जानने के पश्चात् ही हो सकेगा। उदाहरण के लिए एक बच्चे को चलना तभी सिखाया जाए, जब वह चलने की अवस्था का हो चुका हो, अन्यथा इसके परिणाम विपरीत हो सकते हैं।

अतः बाल–मनोविज्ञान की एक व्यावहारिक उपयोगिता यह भी है कि यह बालकों के समुचित निर्देशन के लिए व्यावहारिक उपाय बता सकता है। हम निर्देशन के द्वारा ही बालकों की क्षमताओं और अभिवृत्तियों का उचित रूप से लाभ उठा सकते है। व्यक्तिगत निर्देशन में बालक की व्यक्तिगत कठिनाइयों और दोषों तथा उसकी प्रवृत्तियों और उसके व्यक्तित्व से सम्बन्धित विकारों को दूर करने के उपायों की जानकारी बाल–मनोविज्ञान से प्राप्त होती है। इसी प्रकार व्यावसायिक निर्देशन के अन्तर्गत वह बालक को यह संकेत देता है कि वह व्यवसाय को चुनकर जीवन में अधिक से अधिक सफलता प्राप्त कर सकता है। अन्त में निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में बाल–मनोविज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। बाल–मनोविज्ञान के बिना मनोविज्ञान विषय अधूरापन लिये रहता है।

सोचे और विचार करें–

बाल विकास की आवश्यकता क्यों ?.....
.....।

बाल विकास का क्षेत्र

बाल विकास के क्षेत्र में गर्भधारण अवस्था से युवावस्था तक के मानव की सभी व्यवहार सम्बन्धी समस्याएँ सम्मिलित हैं। इस अवस्था के सभी मानव व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं के अध्ययन में विकासात्मक दृष्टिकोण मुख्य रूप से अपनाया जाता है। इन अध्ययनों में मुख्य रूप से इस बात पर बल दिया जाता है कि विभिन्न विकास अवस्थाओं में कौन–कौन से क्रमिक परिवर्तन होते हैं। ये परिवर्तन किन कारणों से, कब और क्यों होते हैं, आदि। बाल–विकास का क्षेत्र दिन–प्रतिदिन बढ़ रहा है। बाल विकास विषय के क्षेत्र के अन्तर्गत जिन समस्याओं अथवा विषय सामग्री का अध्ययन किया जाता है वह निम्न प्रकार की हो सकती है–

1. वातावरण और बालक– बाल–विकास में इस समस्या के अन्तर्गत दो प्रकार की समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। प्रथम यह कि बालक का वातावरण पर क्या प्रभाव पड़ता है? द्वितीय यह कि वातावरण बालक के व्यवहार, व्यक्तित्व तथा शारीरिक विकास आदि को किस प्रकार प्रभावित करता है? अतः स्पष्ट है कि बालक का पर्यावरण एक विशेष प्रभावकारी क्षेत्र है।

2. बालकों की वैयक्तिक भिन्नताओं का अध्ययन–

बाल विकास में वैयक्तिक भिन्नताओं तथा इससे सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन भी किया जाता हैं। व्यक्तिगत भेदों की दृष्टि से निम्नलिखित तथ्यों का अध्ययन किया जाता है– शरीर रचना सम्बन्धी भेद, मानसिक योग्यता सम्बन्धी भेद, सांवेगिक भेद, व्यक्तित्व सम्बन्धी भेद, सामाजिक व्यवहार सम्बन्धी भेद तथा भाषा विकास सम्बन्धी भेद आदि।

3. मानसिक प्रक्रियाएँ– बाल विकास में बालक की विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन भी किया जाता है जैसे– प्रत्यक्षीकरण, सीखना, कल्पना, स्मृति, चिन्तन, साहचर्य आदि। इन सभी मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन दो समस्याओं के रूप में किया जाता है। प्रथम यह कि विभिन्न आयु स्तरों पर बालक की यह विभिन्न मानसिक प्रक्रियाएँ किस रूप में पाई जाती है, इनकी क्या गति है आदि। द्वितीय यह कि इन मानसिक प्रक्रियाओं का विकास कैसे होता है तथा इनके विकास को कौन से कारक प्रभावित करते हैं।

4. बालक–बालिकाओं का मापन– बाल–विकास के क्षेत्र में बालकों की विभिन्न मानसिक और शारीरिक मापन तथा मूल्यांकन से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन भी किया जाता है। मापन से तात्पर्य है कि इन क्षेत्रों में उसकी समस्याएं क्या है और उनका निराकरण कैसे किया जा सकता है?

5. बाल व्यवहार और अन्तःक्रियाएँ– बाल विकास के अध्ययन क्षेत्र में अनेक प्रकार की अन्तःक्रियाओं का अध्ययन भी होता है। बालक का व्यवहार गतिशील होता है तथा उसकी विभिन्न शारीरिक और

मानसिक योग्यताओं और विशेषताओं में क्रमिक विकास होता रहता है। अतः स्वाभाविक है कि बालक और उसके वातावरण में समय–समय पर अन्तःक्रियाएँ होती रहें। एक बालक की ये अन्तःक्रियाएँ सहयोग, व्यवस्थापन, सामाजिक संगठन या संघर्ष, तनाव और विरोधी प्रकार की भी हो सकती है। बाल–मनोविज्ञान में इस समस्या का भी अध्ययन होता है कि विभिन्न विकास अवस्थाओं में बालक की विभिन्न अन्तःक्रियाओं में कौन–कौन से और क्या–क्या क्रमिक परिवर्तन होते हैं तथा इन परिवर्तनों की गतिशीलता किस प्रकार की है ?

6. समायोजन सम्बन्धी समस्याएँ– बाल विकास में बालक के विभिन्न प्रकारकी समायोजन–समस्याओं का अध्ययन भी किया जाता है। साथ ही इस समस्या का अध्ययन भी किया जाता है कि भिन्न–भिन्न समायोजन क्षेत्रों (पारिवारिक समायोजन, संवेगात्मक समायोजन, शैक्षिक समायोजन, स्वास्थ्य समायोजन आदि) में भिन्न–भिन्न आयु स्तरों पर बालक का क्या और किस प्रकार का समायोजन है। इस क्षेत्र में कुसमायोजित व्यवहार का भी अध्ययन किया जाता है।

7. विशिष्ट बालकों का अध्ययन– जब बालक की शारीरिक और मानसिक योग्यताओं और विशेषताओं का विकास दोषपूर्ण ढंग से होता है तो बालक के व्यवहार और व्यक्तित्व में असमान्यता के लक्षण उत्पन्न हो जाते है। बाल विकास में इन विभिन्न असमानताओं व इनके कारणों और गतिशीलता का अध्ययन होता है। विशिष्ट बालक की श्रेणी में निम्न बालक आते हैं– शारीरिक रूप से अस्वस्थ रहने वाले बालक, पिछड़े बालक, अपराधी बालक एवं समस्यात्मक बालक आदि।

8. अभिभावक बालक सम्बन्ध– बालक के व्यक्तित्व विकास के क्षेत्र में अभिभावकों और परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका है। अभिभावक–बालक सम्बन्ध का विकास, अभिभावक, बालक सम्बन्धों के निर्धारक, पारिवारिक सम्बन्धों में ह्रास आदि समस्याओं का अध्ययन बाल–विकास मनोविज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत किया जाता है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि गर्भावस्था से किशोरावस्था तक की सभी समस्याएँ बाल–विकास की परिसीमा या क्षेत्र में आती हैं।

मूल्यांकन

- बाल–विकास की अवधारणा स्पष्ट करते हुए किन्हीं दो परिभाषाओं का उल्लेख कीजिए।
- बाल–विकास की आवश्यकता एवं क्षेत्र को स्पष्ट कीजिए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

- बाल–विकास का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
- शिक्षक के लिए बाल–विकास की आवश्यकता क्यों हैं ? स्पष्ट कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

- बाल–विकास की किसी एक परिभाषा का उल्लेख कीजिए।
- बाल–विकास के दो क्षेत्रों के नाम लिखिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

- बाल–मनोविज्ञान के व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है–

  (अ) बाल मनोविज्ञान में (ब) शिक्षक मनोविज्ञान में

  (स) किशोर मनोविज्ञान में (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं। **उत्तर (अ)**

- ''बाल–मनोविज्ञान एक वैज्ञानिक अध्ययन है, जिसमें बालक के विकास का अध्ययन गर्भकाल के प्रारम्भ से किशोरावस्था की प्रारम्भिक अवस्था तक करता है।'' यह कथन है–

  (अ) हरलॉक का (ब) थॉम्पसन का

  (स) क्रो एवं क्रो का (द) जे0एस0रास का

  उत्तर (स)

बाल विकास की अवस्थाएं (शेशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था) एवं इनके अन्तर्गत होने वाले विकास

मानव का विकास निश्चित अवस्थाओं में होता है। विकास की प्रत्येक अवस्था की विशेषताएं होती है। मनोवैज्ञानिकों ने अपनी सुविधानुसार विकास को विभिन्न अवस्थाओं में बांटकर उनमें होने वाले परिवर्तनों और विशेषताओं को पहचानकर यह स्पष्ट कर दिया, कि बालक का विकास एक अवस्था से दूसरी अवस्था में अचानक नहीं होता, बल्कि विकास की गति स्वाभाविक रूप से क्रमशः होती रहती है। इन्हें मुख्य रूप से तीन अवस्थाओं में बांटा गया है–

- शैशवावस्था (जन्म से 5 वर्ष तक)
- बाल्यावस्था (5 से 12 वर्ष)
- किशोरावास्था (12 से 18 वर्ष)

विभिन्न अवस्थाओं में विकास

- शारीरिक विकास
- मनसिक विकास (बुद्धि, बुद्धि लब्धि, बुद्धि परीक्षण)
- संवेगात्मक विकास
- संज्ञानात्मक विकास (पियाजे का सिद्धान्त)
- सामाजिक विकास
- भाषा विकास
- सृजनात्मकता व सृजनात्मक क्षमता का विकास

विभिन्न अवस्थाओं में शारीरिक विकास (Physical Development in different stages)

शैशवावस्था में शारीरिक विकास (Physical Development in Infancy)

शैशवावस्था जीवन की सबसे महत्वपूर्ण अवस्था है। शिशु का शारीरिक विकास जन्म के पूर्व गर्भावस्था से ही प्रारम्भ हो जाता है। इस समय माता के खान–पान रहन–सहन, स्वास्थ्य एवं उसके संवेगात्मक संतुलन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। जन्म के बाद शैशवावस्था में विकास में दो सोपान हो जाते हैं

- जन्म से 3 वर्ष
- 3 वर्ष से 5 वर्ष

एडलर महोदय ने कहा, कि जन्म के कुछ माह बाद ही ये निश्चित किया जा सकता है कि जीवन में उसका क्या स्थान है।

शैषवावस्था में शारीरिक विकास (Physical Development in Infancy)

1. **भार (Weight)** जन्म के समय और पूरी शैशवावस्था में बालक का भार बालिका से अधिक होता है। जन्म के समय बालक का भार लगभग 7.15 पौंड और बालिका का भार लगभग 7.13 पौंड होता है। पहले 6 माह में शिशु का भार दुगुना और एक वर्ष के अन्त में तिगुना हो जाता है।

2. **लम्बाई (Length)** शैशावावस्था में 3 वर्ष तक बच्चों के विकास की गति अत्यन्त तीव्र होती है। जन्म के समय शिशु की लम्बाई औसत रूप से 50 सेमी0 होती है। प्रथम वर्ष के अन्त में वह 67 से 70 सेमी0, दूसरे वर्ष के अन्त तक 77 सेमी0 से 82 सेमी0 तक होती है तथा 6 वर्ष तक लगभग 100 सेमी0से 110 सेमी0 लम्बा हो जाता है।

3. **सिर व मस्तिष्क (Head and brain)** नवजात शिशु की सिर की लम्बाई उसके शरीर के कुल लम्बाई की 1/4 होती है। पहले 2 वर्षों में सिर बहुत तीव्र गति से बढ़ता है तथा उसका भार शरीर के भार के अनुपात से अधिक होता है।

4. **हड्डियां (Bones)** नवजात शिशु की हड्डियां छोटी और संख्या में 206 होती हैं। सम्पूर्ण शैशवावस्था में ये छोटी, कोमल, लचीली होती हैं। हड्डियां कैल्शियम, फॉस्फोरस और अन्य खनिज लवणों की सहायता से मजबूत होती हैं। इस आयु में शिशुओं के भोजन में इन लवणों की अधिकता होनी चाहिये।

5. **मांसपेशियां (Muscles)** शिशु की मांसपेशी का भार उसके शरीर के कुल भाग का 23% होता है। यह भार धीरे–धीरे बढ़ता चला जाता है। उसकी भुजाओं का विकास तीव्र गति से होता है। प्रथम दो वर्षों में भुजाएं दुगुनी और टांगे डेढ़ गुनी हो जाती हैं। छः वर्ष की आयु तक मांसपेशियों में लचीलापन होता है।

6. **अन्य अंग (other organs)–** छठे माह में दूध के दांत निकलने प्रारम्भ हो जाते है। सबसे पहले नीचे के अगले दांत निकलते हैं और एक वर्ष की आयु तक उनकी संख्या 8 हो जाती है। लगभग 4 वर्ष की आयु तक दूध के सभी दांत निकल आते हैं। नवजात शिशु का सिर शरीर की अपेक्षा बड़ा होता है। जन्म के समय हृदय की धड़कन कभी तेज व कभी धीमी होती है। जैसे–जैसे हृदय बड़ा होता है, धड़कन में स्थिरता आती जाती है।

शिशु के आन्तरिक अंगों (पाचन अंग, फेफड़ा, स्नायु मंडल, रक्त संचार अंग, जनन अंग और ग्रान्थियां) का विकास तीव्रगति से होता है। शैशवावस्था के प्रथम तीन वर्ष विकास काल के होते हैं। अन्तिम तीन वर्षों में बच्चा मजबूती प्राप्त करता है।

बाल्यावस्था में शारीरिक विकास (Physical Development in Childhood)

बाल्यावस्था जीवन का अनोखा काल होता है। ये अवस्था 6 से 12 वर्ष तक मानी जाती है। बल्यावस्था के प्रथम तीन वर्षों में (6 से 9 वर्ष) शारीरिक विकास तीव्रगति से होता है और बाद के तीन वर्षों में इस विकास में स्थिरता आ जाती है।

1. **भार (weight)** इस अवस्था में बालक के भार में पर्याप्त वृद्धि होती है। 9 या 10 वर्ष की आयु तक बालकों का भार बालिकाओं से अधिक होता है। इसके बाद बालिकाओं का भार अधिक होना प्रारम्भ हो जाता है।

2. **लम्बाई (Length)** बाल्यावस्था में शरीर की लम्बाई कम बढ़ती है। इन सब वर्षों में लम्बाई 2 या 3 इंच ही बढ़ती है।

3. **हड्डियां (Bones)** इस अवस्था में प्रथम 4–5 वर्षों में हड्डियों की संख्या में वृद्धि होती है। 10–12 वर्ष की आयु में हड्डियों का दृढ़ीकरण होता है।

4. **दांत (Teeth)** बाल्यावस्था के आरम्भ में दूध के दांत गिरने लगते हैं और उनके स्थान पर स्थायी दांत निकलने लगते हैं। 12–13 वर्ष की अवस्था तक सभी स्थायी दांत निकल आते हैं।

5. **मांसपेशियां (Muscles)** मांसपेशियों का भार 8 वर्ष तक कुल भार का 27% हो जाता है। बालिकाओं की मांसपेशियां बालको की अपेक्षा अधिक विकसित होती हैं।

6. **अन्य अंगों का विकास (Development of other organs)** बाल्यावस्था में मस्तिष्क आकार और तौल की दृष्टि से पूर्ण विकसित हो जाता है। बाल्यावस्था में सिर के आकार में क्रमशः परिवर्तन होता रहता है। इस अवस्था में बच्चों के लगभग सभी अंगों का पूर्ण विकास हो जाता है तथा वह अपनी शारीरिक गति पर नियंत्रण रखना सीख जाते हैं।

किशोरावस्था में शारीरिक विकास (Physical Development in Adolescence)

किशारोवस्था जीवन का सबसे कठिन काल है। ये परिवर्तन की अवस्था कहलाती है। किशोरावस्था में बालक तथा बालिकाओं का विकास तीव्र गति से होता है। बालकों में तीव्रतम वृद्धि का समय 14 वर्ष की आयु तक तथा बालिकाओं में 11 से 18 वर्ष की आयु तक होता है।

1. **आकार एवं भार** –इस अवस्था में लम्बाई तेजी से बढ़ती है। बालक की लम्बाई 18 वर्ष की आयु तक तथा बालिका की लम्बाई 16 वर्ष की आयु तक बढ़ती है। इस अवस्था में बालकों का भार बालिकाओं से अधिक होता है।

2. **सिर व मस्तिष्क (Head and Brain)** इस अवस्था में सिर व मस्तिष्क का विकास जारी रहता है। 15 या 16 वर्ष की आयु में सिर का लगभग पूर्ण विकास हो जाता है एवं मस्तिष्क का भार 1200 और 1400 ग्राम के बीच में होता है।

3. **हड्डियां (Bones)** हड्डियों में पूर्ण मजबूती आ जाती है और कुछ छोटी हड्डियाँ एक दूसरे से जुड़ जाती हैं।

4. **अन्य अंगों का विकास (Development of other organs)** –इस अवस्था में आँख, कान, नाक, त्वचा, स्वादेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों का पूरा विकास हो जाता है। मांसपेशियों का विकास तीव्रगति से होता है। मस्तिष्क का विकास लगभग पूरा हो जाता है।

5. **विभिन्न ग्रन्थियों का विकास–** किशोरावस्था में विभिन्न परिवर्तनों का आधार, अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियां होती है, जिनमें पिट्यूटरी, थायरॉयड, एड्रीनल ग्रन्थियां प्रमुख हैं। इन ग्रन्थियों के स्त्राव शारीरिक, मानसिक और भावात्मक विकास को प्रभावित करते हैं। इस अवस्था में बच्चे खेलकूद तथा अन्य क्रियाओं में अधिक सक्रिय हो जाते हैं। वे अपने कार्य स्वयं करने लगते हैं। दूसरों पर निर्भर नही करते हैं।

किशोर/किशोरियों को शिक्षा देते समय भी उनकी शारीरिक अभिवृद्धि और परिवर्तनों को ध्यान में रखना चाहिये। किशोरावस्था जीवन का वह समय है जब हड्डियाँ बड़ी शीघ्रता से बढ़ती व विकसित होती है। अतः उनके स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखना चाहिये तथा उनके अनुकूल उचित शारीरिक शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिये।

गतिविधियाँ– प्रशिक्षक प्रशिक्षुओं से चर्चा करें कि विभिन्न अवस्थाओं (शैशवावस्था, बाल्यावस्था व किशोरावस्था) में शारीरिक परिवर्तन किस प्रकार आते हैं। प्रशिक्षणार्थियों से निकलकर निम्न बिन्दु आ सकते हैं जिस पर पूरे समूह में चर्चा की जाये–

- शारीरिक विकास में तीव्रता किस स्तर पर सबसे अधिक होती है ?
- बाल्यावस्था में शारीरिक विकास की क्या विशेषता होती है ?
- किशोरावस्था को परिवर्तन का समय क्यों कहते हैं ?

इसी प्रकार अन्य गतिविधियाँ चर्चा करके निकलवायें तथा उस पर चर्चा करें।

पुनरावृत्ति विन्दु

- बाल विकास की तीन अवस्थाएं–
- शैशवावस्था (जन्म से 5 वर्ष)
- बाल्यावस्था (5 से 12 वर्ष)
- किशोरावस्था (12 से 18 वर्ष)
- 3 से 9 वर्ष तक शारीरिक विकास की गति तीव्र
- किशोरावस्था विभिन्न परिवर्तनों की अवस्था

बोध प्रश्न

- बाल विकास की अवस्थाएं लिखिए .....
  .....।
- जन्म से 5 वर्ष तक की अवस्था कहलाती है .....
  .....।

विभिन्न अवस्थाओं में मानसिक विकास

शैषवावस्था में मानसिक विकास (Mental Development in Infancy)

जन्म के समय शिशु का मस्तिष्क पूर्णतया अविकसित होता है और वह अपने वातावरण को नही जानता। जैसे–जैसे उसका मस्तिष्क विकसित होता है, उसे अपने वातावरण के बारे में अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त होता जाता है।

- जन्म से तीन माह तक शिशु केवल अपने हाथ–पैर हिलाता है। भूख लगने पर रोता है। हिचकी लेना, दूध पीना कष्ट का अनुभव करना, चौंकना। चमकदार चीज को देखकर आकर्षित होना या कभी–कभी हंसना आदि क्रियाएं करता है।
- चौथे से छः मास तक शिशु सब व्यंजनों की ध्वनियां करता है। वस्तुओं को पकड़ने का प्रयास करता है। सुनी हुई आवाज का अनुकरण करता है व अपना नाम समझने लगता है।
- सातवें मास से नौवे मास तक वह घुटने के बल चलने और सहारे से खड़ा होने लगता है।
- दसवें माह से 1 वर्ष तक वह बोलने का अनुकरण करता है।
- दूसरे वर्ष से शब्द व वाक्य बोलने लगता है।
- तीसरे वर्ष में पूछे जाने पर अपना नाम बताने लगता है। कविता या कहानी भी छोटी–छोटी सुनाता है। अपने शरीर के अंग पहचानने लगता है।
- चौथे वर्ष तक वह 4–5 तक गिनती लिखना व अक्षर लिखना जानने लगता है।
- पांचवे वर्ष में शिशु हल्की और भारी वस्तु में अन्तर करने लगता है व विभिन्न रंग पहचानने लगता है। वह अपना नाम लिखने लगता है।

इस प्रकार शैशवावस्था में मानसिक विकास शीघ्रता से होता है। तर्क व निर्णय करने की क्षमता अधिक विकसित नही होती है। जन्म से शिशु की स्मरण शक्ति बहुत कम होती है। ज्ञानेन्द्रियों के विकास के साथ संवेदन क्रिया आरम्भ हो जाती है। इस अवस्था में बच्चे कल्पना जगत में रहते हैं। वे अधिकतर अनुभव, निरीक्षण व अनुकरण द्वारा सीखते हैं। वह छोटी–छोटी समस्याओं का समाधान करने लगता है।

बाल्यावस्था में मानसिक विकास (Mental Development in Childhood)

बालक की शारीरिक आयु के साथ–साथ मानसिक विकास भी होने लगता है। बच्चे स्कूल जाने लगते हैं। इसलिए उन्हें मानसिक विकास के अधिक अवसर मिलते है।

- इस अवस्था में बालक के समझने, स्मरण करने, विचार करने, स्मरण करने, समस्या समाधान करने, तर्क चिन्तन व निर्णय लेने आदि की क्षमता का विकास समुचित मात्रा में हो जाता है।
- वह छोटी–छोटी घटनाओं का वर्णन करने लगता है।

- बच्चों में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का संचय करने की क्षमता विकसित होती है व वह रचनात्मक कार्यों में रुचि लेने लगता है। जैसे उसे लकड़ी, कागज व मिट्टी की वस्तुओं को बनाने में आनन्द मिलता है।
- बच्चे समूह में रहना व कार्य करना पसन्द करते हं। साथ ही अनुकरण, सहानुभूति व सहयोग आदि की सामान्य प्रवृत्तियों का विकास भी इस अवस्था में हो जाता है।
- बच्चे पढ़ने, लिखने व सीखने में अधिक रुचि लेते हैं।
- खेल उनकी दिनचर्या का प्रमुख अंग बन जाता है। वह पहेली बुझाने व समस्यात्मक खेलों में रुचि लेने लगते हैं।
- बच्चे पर्यावरण की वास्तविकताओं को समझने लगते हैं और उनमें आत्मविश्वास विकसित हो जाता है।

किशोरावस्था में मानसिक विकास (Mental Development in Adolescence)

- किशोरावस्था में मानसिक विकास अपनी उच्चतम सीमाओं को छू लेता है।
- किशोर–किशोरी की स्मरण शक्ति में स्थायित्व आने लगता है। उनकी कल्पना, चिन्तन, तर्क विश्लेषण, संश्लेषण, अमूर्त चिन्तन, समस्या समाधान जैसी उच्च मानसिक शक्तिओं का पूर्ण विकास हेा जाता है लेकिन वह उसका उपयेाग प्रौढ़ों की तरह करने में समर्थ नही होते।
- इस अवस्था में कल्पना की बहुलता होती है, वे कभी कभी दिवा स्वप्न (Day dreaming) देखते हैं।
- किशोरावस्था में शब्द भण्डार अधिक बढ़ जाता है और चिन्तन, तर्क व कल्पना शक्ति के साथ किशोर/किशोरी में वाकपटुता आ जाती है।
- इस अवस्था में किशोर/किशोरी की रुचियों में भी तीव्र विकास होता है। आकर्षक व्यक्तित्व, वेशभूषा, पढाई लिखाई, पौष्टिक भोजन, भावी रोजगार, कम्प्यूटर, इन्टरनेट, साहित्यिक व सांस्कृतिक कार्यक्रमों के प्रति किशोर/किशोरी की विशेष रुचि होती है।
- इस अवस्था में बच्चा बाल्यावस्था से किशोरावस्था की ओर अग्रसित होता है, इसलिए किशोर/किशोरी को नये ढंग से समायोजन करना पड़ता है।

बुद्धि (Intelligence)

बालक/बालिकाओं के मानसिक योग्यताओं का पता लगाने के लिए हम उनकी बुद्धि का पता लगाते हैं। हम अक्सर यह कहते हैं कि अमुक व्यक्ति बहुत बुद्धिमान है व दूसरा व्यक्ति कम बुद्धिमान। सामान्यतः सीखने, तर्क करने, चिन्तन करने, कल्पना करने व अमूर्त चिन्तन करने की योग्यता बुद्धि कहलाती है।

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि की परिभाषाएं दी हैं–

वुडवर्थ (Wood worth) ''बुद्धि, कार्य करने की विधि है।''

टरमन (Terman)–''बुद्धि अमूर्त विचारों के बारे में सोचने की योग्यता है।''

बिने (Binet) ''बुद्धि इन चार शब्दों में निहित है–ज्ञान, आविष्कार, निर्देश और आलोचना।''

रायबर्न (Ryburn) ''बुद्धि वह शक्ति है जो हमको समस्याओं का समाधान करने और उद्देश्यों को प्राप्त करने की क्षमता देती है।

मोटे तौर पर बुद्धि में निम्नलिखित प्रकार की योग्यता आती है–

- सीखने की योग्यता
- अमूर्त चिन्तन करने की योग्यता
- समस्या का समाधान करने की योग्यता
- अनुभव से लाभ उठाने की योग्यता
- सम्बन्धों को समझने की योग्यता
- अपने वातावरण से सामजस्य करने की योग्यता

बुद्धि लब्धि (I.Q.) –विभिन्न मानसिक योग्यता परीक्षणों के माध्यम से हम व्यक्ति की मानसिक आयु का पता लगा लेते हैं। जैसे यदि कोई 8 वर्ष का बालक 10 वर्ष की आयु के लिए निर्मित मानसिक योग्यता परीक्षण कर लेता है। तो उसकी वास्तविक आयु 8 वर्ष व मानसिक आयु 10 वर्ष मानी जायेगी। बालक की बुद्धि लब्धि निकालने के लिए हम निम्न सूत्र का प्रयोग करते हैं।

$$\text{बुद्धि लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}} \times 100$$

उदाहरण के लिए मानसिक आयु 10 वर्ष व वास्तविक आयु 8 वर्ष है तो बुद्धि लब्धि 10/8X100 होगी अर्थात 125 होगी।

बुद्धि लब्धि से व्यक्ति की बुद्धि का पता लगाने के लिए टरमन(Terman) नामक मनोवैज्ञानिक ने निम्नलिखित वर्गीकरण प्रस्तुत किया –

बुद्धि लब्धि	बुद्धि के प्रकार
140 या उससे अधिक	प्रतिभाशाली (Genius)
120 से 140	अति श्रेष्ठ (Very Superior)
110 से 120	श्रेष्ठ बुद्धि (Superior)
90 से 110	सामान्य बुद्धि (Average)
80 से 90	मन्द बुद्धि (Dull Mind)
70 से 80	क्षीण बुद्धि (Feeble Mind)
70से कम	निश्चित क्षीण बुद्धि (Definelty Feeble minded)
50 से 70	अल्प बुद्धि (Morons)
20 या 25 से 50	मूर्ख बुद्धि (Imbecile)
20 या 25 से कम	महामूर्ख (Idiot)

अब आपकी बारी

- गतिविधि–प्रशिक्षुओं से पूछे, कि यदि किसी बच्चे की मानसिक आयु 16 वर्ष और वास्तविक आयु 10 वर्ष है। तो उसकी बुद्धि लब्धि क्या होगी व वो किस बुद्धि स्तर का बालक कहलायेगा?

बुद्धि परीक्षण (Intelligence Test) किसी भी व्यक्ति की बुद्धि का पता लगानें के लिए विभिन्न प्रकार के बुद्धि परीक्षणों का निर्माण किया गया है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने समय समय पर विभिन्न बुद्धि परीक्षण बनाये। इनको मुख्य रूप से दो वर्गों में विभाजित किया जाता है –

1. वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण
2. सामूहिक बुद्धि परीक्षण

वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण (Individual Intelligence Test) परीक्षण एक समय में एक ही व्यक्ति पर किया जा सकता है। इसका आरम्भ बिने (Binet) ने किया।

सामूहिक बुद्धि परीक्षण (Group Intelligence Test)– यह परीक्षा एक समय में अनेक व्यक्तियों की ली जाती है। इसका प्रारम्भ प्रथम विश्वयुद्ध के समय अमेरिका में हुआ। कारण यह था, कि सरकार मनुष्यों की मानसिक योग्यताओं के अनुसार उनको सेना में सैनिक अफसरों व कर्मचारियों के अन्य पदों पर नियुक्त करना चाहती थी।

वैयक्तिक व सामूहिक दोनों प्रकार के परीक्षणों के दो रूप हो सकते हैं –

1. भाषात्मक (Verbal)
2. क्रियात्मक (Non Verbal)

भाषात्मक परीक्षण(Verbal Test) इसमें भाषा का प्रयोग किया जाता है व अमूर्त बुद्धि की परीक्षा ली जाती है। इसका मुख्य उद्देश्य है, कि व्यक्ति को लिखने पढ़ने का कितना ज्ञान है। उसे प्रश्नों के उत्तर लिखकर, गोला बनाकर गुणा बनाकर या रेखांकित करके देने होते हैं।

इस परीक्षा में निम्न प्रकार के प्रश्न पूछे जा सकते हैं– (1) अंकगणित के प्रश्न (2) व्यवहारिक ज्ञान से सम्बन्धित प्रश्न (3) निर्देश के अनुसार प्रश्नों के उत्तर (4) समानार्थी या विलोम शब्द (5) बेंतरतीव शब्दों को तरतीव में लिखना।

क्रियात्मक परीक्षण (Non Verbal or Performance Test) इन परीक्षणों का प्रयोग उन व्यक्तियों पर किया जाता है, जिनको भाषा का ज्ञान कम होता है या जो पढ़ना लिखना नही जानते। इसके द्वारा मूर्त बुद्धि का पता लगाया जाता है। इस परीक्षण में वास्तविक वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है और

परीक्षार्थियों को समस्यापूर्ण कार्य करने को दिये जाते हैं। जैसे (1) चित्र के बिखरे हुए टुकड़ों को क्रम से लगाकर चित्र पूरा करना। (2) किसी दिये हुए चित्र में असम्भव बात को बताना। (3) तिकोनी, चौकोर व गोल वस्तुओं को रखकर आकृति को पूरा करना। (4) भूल भुलैयों से होकर बाहर जाने का मार्ग बताना आदि।

इन सभी परीक्षणों का प्रयोग अधिकतर प्रषिक्षित मनोवैज्ञानिक द्वारा ही किया जाना चाहिए।

कुछ प्रमुख बुद्धि परीक्षणों के नाम	
वैयक्तिक भाषात्मक परीक्षण (Individual Language Test)	1. बिने साइमन स्केल (Binet Siman Intelligence Scale) 2. स्टैनफोर्ड बिने स्केल (Standford Binet Scale)
वैयक्तिक क्रियात्मक परीक्षण (Individual Performance Test)	1. पोरटियस भूल भुलैया परीक्षण (Porteus Maze Test) 2. वेश्लर वैल्यूब टेस्ट (Wechsler Bellevue Test)
समूहिक भाषात्मक परीक्षण (Group Language Individual Language Test)	1. आर्मी अल्फा टेस्ट (Army Alpha Test) 2. सेना सामान्य वर्गीकरण टेस्ट (Army General classification Test)
सामूहिक क्रियात्मक परीक्षण (Group Performance Test)	1. आर्मी बीटा टेस्ट (Army Beta Test) 2. शिकागो क्रियात्मक टेस्ट (Chicago Non Verbal Test)

बुद्धि परीक्षणों की उपयोगिता (Utility of Intelligence Tests)

विभिन्न आयु वर्ग के लिए निर्मित परीक्षणों के माध्यम से हम बालक की बुद्धि का पता लगाकर उनके अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था कर सकते हैं। इसी कारण से बुद्धि परीक्षण शिक्षा का महत्वपूर्ण साधन बन गये हैं जैसे–

- सर्वोत्तम बालक का चुनाव करने में।
- पिछड़े बालकों का चुनाव करने में ।
- अपराधी व समस्यात्मक बालकों का सुधार करने में।
- बालकों का वर्गीकरण करने में ।
- बालकों की विशिष्ट योग्यताओं का ज्ञान करने में।
- बालकों की क्षमता के अनुसार कार्य करवाने में।
- बालकों की व्यावसायिक योग्यता का ज्ञान करने में।
- बालकों की भावी सफलता का ज्ञान करने में।
- अपव्यय का निवारण करने में।
- राष्ट्र के बालकों की बुद्धि का ज्ञान करने में।

पुनरावृत्ति बिन्दु–

- जन्म के तीन माह तक शिशु केवल अपने हाथ–पैर चलाता है।
- दसवें माह से 1 वर्ष तक वह बोलने का अनुकरण करता है।
- पांचवे वर्ष में शिशु हल्की व भारी वस्तुओं में अन्तर करने लगता है।
- बाल्यावस्था में जिज्ञासु प्रवृत्ति बढ़ती है।
- बाल्यावस्था में खेल उनकी दिनचर्या का अंग बन जाते हैं।
- किशोरावस्था में बच्चा बाल्यावस्था से किशोरावस्था की ओर बढ़ता है।
- किशोरावस्था जीवन का कठिन काल है, क्योंकि न तो वह बच्चा होता है न वयस्क।
- किशोरावस्था में बुद्धि का अधिकतम विकास हो जाता है।
- बुद्धि परीक्षणों की हमारे जीवन में बहुत उपयोगिता है।

बोध प्रश्न

- किस अवस्था में बच्चा अधिक कल्पनाशक्ति होता है ? .....
  .....।
- किस अवस्था में बालक समूह में रहना अधिक पसन्द करता हैं ? .....
  .....।
- किस अवस्था को जटिल अवस्था कहा गया है ? .....
  .....।

विभिन्न अवस्थाओं में संज्ञानात्मक विकास (Cognitive Development in different stages)

पियाजे का सिद्धान्त

पियाजे (Piaget) ने संज्ञानात्मक विकास को मुख्य रूप से चार कालों (stages) में विभाजित किया–संवेदी पेशीय अवस्था (Sensory Motor stage) प्राकसंक्रियात्मक अवस्था (Pre operational stage) मूर्त संक्रिया अवस्था (concrete operational stage) और औपचारिक संक्रिया अवस्था (Formal operational stage)

संवेदीपेशीय अवस्था (Sensory Motor stage) जन्म से 2 वर्ष तक बालक का संज्ञानात्मक विकास निम्न रूप से होता है। इस आयु के बच्चे अपनी इन्द्रियों द्वारा प्राथमिक अनुभव करते हैं। इस अवस्था को पियाजे ने छः उप अवस्थाओं (substages) में बांटा–

सहज क्रियाओं की अवस्था (stage of reflex activities)

यह अवस्था जन्म से 30 दिन तक होती है। इसमें शिशु केवल सहज क्रिया करता है। इनमें वस्तु को लेकर मुंह में लेकर चूसने की क्रिया सबसे अधिक प्रबल है।

प्रमुख वृत्तीय अनुक्रियाओं की अवस्था (Stage of Circular Reaction Primary)

1 माह से 4 माह के बच्चों की सहज क्रियाएं कुछ सीमा तक उनकी अनुभूतियों के आधार पर परिवर्तित होती है, दोहराई जाती है और समन्वित होती है।

गौण वृत्तीय अनुक्रियाओं की अवस्था (stage of secondary circular Activities)

यह अवस्था 4 माह से 6 माह की होती है। इस अवस्था में बच्चे वस्तुओं को स्पर्श करने व इधर–उधर करने की अनुक्रियाएं करते हैं। वे ऐसी भी अनुक्रियाएं करते हैं, जिनसे उन्हें सुख मिलता है।

गौड़ स्कीमेटा के समन्वय की अवस्था (Stage of co-ordination of secondary schemata)

यह अवस्था 8 से 12 माह तक की अवस्था है। इस अवस्था में शिशु उद्देश्य (Goal) और उसको प्राप्त करने के साधन (means) में अन्तर करने लगते हैं व बड़ों का अनुकरण करने लगते हैं।

तृतीय वृत्तीय अनुक्रियाओं की अवस्था(Stage of Tertiary circular Activities)

यह अवस्था 12 से 18 माह की होती है। इसमें बच्चे वस्तुओं के गुणों को प्रयत्न व भूल द्वारा सीखते हैं व जानते हैं।

मानसिक संयोग द्वारा नये साधनों के खोज की अवस्था (Stage of invention of new Means through mental co-ordination)

यह अवस्था 18 से 24 माह की अवस्था है। इस अवस्था देखी हुई वस्तु की अनुपस्थिति में भी उसके अस्तित्व को समझने लगते हैं।

2. प्राक्संक्रियात्मक अवस्था (Properational Stage) –पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास की दृष्टि से 2–7 वर्ष की अवस्था इन्होंने दो उप अवस्थाओं में बांटा है–

प्राक्संक्रियात्मक अवधि (Properational period) –यह अवधि 2 से 4 वर्ष की होती है। इस अवस्था में बच्चे अपने इधर उधर की वस्तुओं, प्राणियों व शब्दों में सम्बन्ध स्थापित करने लगते हैं। ये सब अनुकरण व खेल द्वारा होता है।

पियाजे के अनुसार 4 वर्ष तक की अवस्था के बच्चे सभी निर्जीव वस्तुओं को सजीव के रूप में लेते हैं।

दूसरे बच्चे अपने विचारों को सही मानते हैं और ऐसा समझते हैं कि दुनिया उनके इर्द–गिर्द ही है।

(II) **अन्तर्दशी अवस्था** (Intutive Period) यह अवस्था 4 से 7 वर्ष तक चलती है। इस अवस्था में बालक भाषा सीखने लगता है, चिन्तन व तर्क करने लगता है। परन्तु उनके तर्क चिन्तन में कोई

क्रमबद्धता नहीं होती। छः वर्ष की आयु पूरी करते–करते बालकों में मूर्त प्रत्ययों के साथ अमूर्त प्रत्ययों का निर्माण होने लगता है।

3. मूर्तसंक्रिया की अवस्था (Stage of Concrete operation) –पियाजे (Piage) ने 7 से 11 वर्ष की आयु को मूर्तसंक्रिया की अवस्था कहा। इस अवस्था में –

(i) बच्चे अधिक व्यावहारिक व यथार्थवादी होती हैं।
(ii) बच्चों में तर्क एवं समस्या समाधान की क्षमता का विकास होने लगता है।
(iii) मूर्त समस्याओं का समाधान बच्चे ढूँढ़ने लगते हैं। परन्तु अमूर्त समस्याओं को नही समझ पाते।
(iv) बच्चे वस्तुओं को उनके गुणों के आधार पर क्रमबद्ध व वर्गीकृत करने लगते हैं।
(v) इस अवस्था में बच्चों के चिन्तन में क्रमबद्धता नहीं होती।

4. औपचारिक संक्रिया की अवस्था (Stage of Formal operation) यह अवस्था 12 वर्ष की आयु से वयस्क होने की अवस्था है। इस अवस्था में 12 वर्ष का होते –होते बालक का मस्तिष्क परिपक्व होने लगता है।

- उसके चिन्तन में क्रमबद्धता आने लगती है।
- जैसे–जैसे बच्चों की आयु बढ़ती है उनके अनुभव बढ़ते हैं, वैसे–वैसे उनके समस्या समाधान की क्षमता बढ़ती है जिसे पियाजे ने सम्प्रत्यय चिन्तन (Conceptual thinking) की संज्ञा दी।
- पियाजे के अनुसार इस आयु के बच्चे प्रतीकात्मक शब्दों (Symbolic words) रूपकों व उपमानों का आशय समझने लगते हैं व अमूर्त प्रत्ययों का भी निर्माण करते हैं।
- पियाजे के अनुसार प्रत्यय निर्माण की यह क्रिया अनवरत रूप से जीवन भर चलती है, जिसका प्रकार व स्तर उसकी शिक्षा व अनुभवों पर निर्भर करता है।

पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले संज्ञानात्मक विकास को जानने के लिए बहुत उपयोगी है। इसका महत्व बालक, शिक्षक व अभिभावकों के लिए विशेष रूप से होता है।

पुनरावृत्ति– पियाजे के संज्ञानात्मक विकास की मुख्य चार अवस्थाएं है–

- संवेदी पेशीय अवस्था
- प्राक्संक्रियात्मक अवस्था
- मूर्त संक्रिया अवस्था
- औपचारिक संक्रिया अवस्था

बोध प्रश्न–

संवेदीपेशीय अवस्था को मुख्य रूप से कौन–कौन सी अवस्थाओं में बांटा गया है .....
.....।

7 से 11 वर्ष की अवस्था को किस नाम से पुकारते हैं– .....
.....।

विभिन्न अवस्थाओं में संवेगात्मक विकास (Emotional Development in Different Stages)

संवेगात्मक विकास मानव जीवन के विकास व उन्नति के लिए आवश्यक है। यह विकास मानव जीवन को बहुत प्रभावित करता है व उसी से उसके व्यक्तित्व निर्माण में सहायता मिलती है। जब व्यक्ति अपने संवेगो जैसे भय, क्रोध, प्रेम आदि का सही प्रकाशन करना सीख लेता है, तो उसे संवेगात्मक विकास कहते हैं।

शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास (Emotional Development in Infancy)

- शिशुओं का संवेगात्मक विकास धीरे–धीरे अस्पष्टता की ओर होता है।
- विशिष्ट संवेग मन्द गति के स्वाभाव के साथ जुड़ता है।
- शारीरिक आयु के साथ–साथ संवेगात्मक विकास में तीव्रता होती है।

शिशु के संवेगात्मक विकास को हम निम्न रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं –

क्रम संख्या	आयु माह	स्वेग प्रकार
1	जन्म के समय	उत्तेजना
2	1 माह	पीड़ा–आनन्द
3	3 माह	क्रोध
4	4 माह	परेशानी
5	5 माह	भय
6	10 माह	प्रेम
7	15 माह	ईर्ष्या
8	24 माह	खुशी–प्रसन्नता

- शैशवावस्था में मुख्यतया भय, क्रोध व प्रेम आदि तीन ही संवेगों का विकास होता है
- शिशु थोड़ी–थोड़ी देर में अपने संवेगों को बदलते रहते हैं। वो कभी रोता है, कभी हंसता है और कभी–कभी दोनों का प्रकटीकरण साथ–साथ ही करने लगता है।
- शैशवावस्था के अन्तिम चरण में वातावरण संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने लगता है।

बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास (Emotional Development in Childhood)

- इस अवस्था में संवेगों में स्थायित्व आना प्रारम्भ हो जाता है।
- बालक संवेग व समाज के नियमों में समायोजन करने लगता है।
- वह प्रत्येक क्रिया के प्रति प्रेम, ईर्ष्या, घृणा व प्रतिस्पर्धा की भावना प्रकट करने लगता है।

- माता–पिता द्वारा बताये कार्य के प्रति वह हां या न कहकर चुप रहता और बाद में झूठ बोलकर अपने को उपेक्षा से बचाता है।
- इस अवस्था के अन्तिम चरणों में वह संवेगों पर नियन्त्रण करना सीख जाता है।

किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास (Emotional Development in Adolescence)

किशोरावस्था में प्रवेश करने पर किशोर/किशोरी से अनुशासित जीवन व्यतीत करने की आशा की जाती है, पर परिणाम ठीक इसके विपरीत होता है। हम उन्हें न तो बालकों की कोटि में रखते हैं न बड़ों की कोटि में। इस अवस्था में सबसे अधिक संवेगात्मक अस्थिरता पाई जाती है।

- किशोर/किशोरी में प्रेम, दया, क्रोध, सहानुभूति आदि संवेग स्थायी रूप धारण कर लेते हैं। वह इन पर नियन्त्रण नही रख पाता। अतः सामान्यतः अन्यायी व्यक्ति के प्रति क्रोध व दुखी व्यक्ति के प्रति दया की अभिव्यक्ति करता है।
- किशोर/किशोरी की शारीरिक शक्ति की उनके संवेगों पर छाप होती है। जैसे सबल व स्वस्थ किशोर में संवेगात्मक स्थिरता व निर्बल व अस्वस्थ किशोर में संवेगात्मक अस्थिरता पाई जाती है।
- किशोर/किशोरी अनेको बातों के बारे में चिन्तित रहते हैं। उदाहरणार्थ– अपनी आकृति, स्वास्थ्य, सम्मान, धन प्राप्ति, शैक्षिक प्रगति, सामाजिक सफलता आदि।
- किशोर न तो बालक समझा जाता है न प्रौढ़। अतः उसे अपने संवेगात्मक जीवन में वातावरण से अनुकूलन में बहुत कठिनाई होती है। यदि वह अपने प्रयास में असफल रहता है, तो उसे घोर निराशा होती है। ऐसी स्थिति में वो कभी–कभी घर से भाग जाता है या आत्महत्या तक का शिकार हो जाता है।
- किशोरावस्था में असाधारण रूप से शारीरिक व मानसिक परिवर्तन होते हैं। किशोर और किशोरी दोनों में काम प्रवृत्ति इतनी तीव्र होती है जो कि उसके संवेगात्मक व्यवहार पर बहुत अधिक प्रभाव डालती है।

किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास इतना विचित्र होता है कि किशोर/किशोरी एक ही परिथिति में विभिन्न अवसरों पर विभिन्न प्रकार का व्यवहार करते हैं। जो परिस्थिति एक अवसर पर उन्हें उल्लास से भर देती हैं, वही परिस्थिति दूसरे अवसर पर उसे खिन्न कर देती हैं।

पुनरावृत्ति विन्दु

- जन्म के बाद बच्चों की अभिव्यक्ति स्पष्ट नही होती, परन्तु धीरे–धीरे समय बढ़ने पर स्पष्ट होने लगती है।
- संवेग के मुख्य तीन प्रकार है–
  (1) क्रोध (2) भय (3) प्रेम

बोध प्रश्न

संवेगात्मक विकास के लिए

- विद्यालय का वातावरण किस प्रकार होना चाहिये ? .....

.....।

- संवेग के तीन प्रकार बताइये .....
.....।

विभिन्न अवस्थाओं में सामाजिक विकास
(Social Development in Different Stages)

शैशवावस्था में सामाजिक विकास (Social Development in Infancy)

शिशु जन्म से सामाजिक नहीं होता। जन्म के बाद अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के प्रति प्रतिक्रिया करता है। इस प्रकार सामाजिक प्रक्रिया प्रथम सम्पर्क में प्रारम्भ होकर जीवनपर्यन्त चलती है। हम शिशु के सामाजिक विकास को निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं–

क्रम संख्या	आयु माह	समाजिक व्यवहार का रूप
1	प्रथम माह	ध्वनियों में अन्तर करना।
2	द्वितीय माह	मानव ध्वनि पहचानना, मुस्कराकर स्वागत करना।
3	तृतीय माह	माता के लिए प्रसन्नता व माता के अभाव में दुख।
4	चतुर्थ माह	परिवार के सदस्यों को पहचानना
5	पंचम माह	प्रसन्नता व क्रोध में प्रतिक्रिया व्यक्त करना।
6	षष्ठम् माह	परिचितों से प्यार व अन्य लोगों से भयभीत होना
7	सप्तम माह	अनुकरण के द्वारा हाव–भाव सीखना
8	अष्टम एवं नवम् माह	हावभाव के द्वारा विभिन्न संवेगों (प्रसन्नता, क्रोध, भय) का प्रदर्शन करना।
9	दशम एवं ग्याहरवें माह	प्रतिछाया के साथ खेलना, नकारात्मक विकास
10	दूसरे वर्ष की अवधि में	बड़ों के कार्यों में सहायता करना, सहयोग, सहानुभूति का विकास।

तृतीय वर्ष तक बालक आत्मकेन्द्रित रहता है। वह अपने लिए ही कार्य करता है, अन्य किसी के लिए नहीं। दो या अधिक बालकों के बीच उसमें सामाजिकता का भाव विकसित होता है। इस प्रकार चतुर्थ वर्ष के समाप्त होने तक बालक बर्हिमुखी व्यक्तित्व को धारण करना प्रारम्भ कर देता है। शैशवावस्था के अन्तिम वर्षों में शिशु का व्यवहार वाहय परिवेश की ओर केन्द्रित हो जाता है। शिशु मित्र बनाना, विचार विनमय करना, अपने साथियों में समायोजन करना सीख जाते हैं।

बाल्यावस्था में सामाजिक विकास (Social Development in Childhood)

शिशु का संसार परिवार व बालक का संसार परिवार के बाहर संगी–साथी व विद्यालय होता है।

- बालक एवं बालिकाओं में सामाजिक जागरूकता, चेतना व समाज के प्रति रूझान होता है। वो समूह का सदस्य होने के नाते समाज या समूह के आदर्शों का पालन करते हैं।
- इस आयु के बच्चे बालक बालिकाएं अपने समूह अलग–अलग बनाते हैं। उन्हें खेल अधिक प्रिय होते हैं। वे अपने समूह में नियमों का पालन करते है।

- इस अवस्था में बच्चे मित्र बनाने लगाते है। वे अधिकतर कक्षा के सहपाठी को ही मित्र बनाते हैं।
- इस आयु में बच्चे आत्मनिर्भर होने का प्रयास करते हैं। वे घर से बाहर निकलकर अन्य बालकों के साथ समय बिताते हैं, कार्य करते हैं व निर्णय भी लेते हैं। उनमें आत्मसम्मान की मात्रा अधिक होती है।
- बाल्यावस्था में बालकों में प्रवृत्तियों, चारित्रिक गुण व नागरिक गुणों आदि का विकास होता है। वे अपने माता–पिता, अध्यापक आदि के व्यक्तित्व से प्रभावित होते हैं और उनकी विशेषताओं को सीखते हैं।
- इस अवस्था में बच्चे आत्मकेन्द्रित या स्वार्थी नही होतें, बल्कि वे समाज में अपने को समायोजित करते हैं।
- इस अवस्था में बच्चो में नेता बनने की भावना दिखाई देती है व सामाजिक प्रशंसा व स्वीकृति प्राप्त करने की प्रवृत्ति होती है।

किशोरावस्था में सामाजिक विकास (Social Development in Adolescence)

किशोरावस्था मानव जीवन की अनोखी अवस्था होती है। उसके प्रति दूसरों के और दूसरों के प्रति उसके दृष्टिकोण न केवल उसके अनुभवों में, वरन उसके सामाजिक सम्बन्धों में भी परिवर्तन लाने लगते है। इससे उसके सामाजिक विकास पर भी निम्न प्रभाव पड़ता है–

- इस अवस्था में किशोर/किशोरी में आत्मप्रेम की भावना बहुत अधिक होती है। वे अपनी वेश–भूषा पर विशेष ध्यान देते हैं तथा स्वयं को आकर्षक बनाने में अधिक समय व्यतीत करते हैं।
- इस अवस्था किशोर/किशोरी में विषम लिंगीय आकर्षण होने लगता है। वे एक दूसरे के साथ समय बिताने के लिए उत्सुक रहते हैं।
- इस आयु में बच्चे अपने समूह के सक्रिय व प्रतिष्ठित सदस्य बन जाते है आरै वो समूह के लिए कुछ भी करने को तैयार रहते हैं।
- इस आयु में बच्चों में आत्म सम्मान की भावना बहुत अधिक होती है और वो अपने को बच्चा न मानकर वयस्क मानते हैं।
- किशोर/किशोरी में संवेगों की तीव्र अभिव्यक्ति होती है। वे अपनी इच्छाओं को समाज के मापदण्ड के खिलाफ भी पूरा करना चाहते हैं। इसलिए उनके समायोजन में अस्थिरता आ जाती है।

किशोर/किशोरी के अन्दर सामाजिक चेतना की जागृति ही भावी राष्ट्रीय एकता व मानवीय एकता के लिए प्रारम्भिक प्रयास है।

पुनरावृत्ति विन्दु–

- प्रथम माह में शिशु की प्रतिक्रिया स्पष्ट नही होती।

- एक वर्ष की उम्र में वह लोगों से हिल मिल जाता है।
- पांचवे वर्ष में वह दूसरों से समायोजन करने लगता है।
- बाल्यावस्था में बालक/बालिका अपने अलग–अलग समूहों का निर्माण करते हैं व उन्हीं के आदेशों का पालन करते हैं ।
- किशोरावस्था में सजने संवरने में विशेष रुचि होती है व विपरीत लिंगीय आकर्षण होता है।

बोध प्रश्न–

बच्चे का समायोजन किस आयु में अच्छा होता है।.....
.....
.....।

- आप अपने किशोरावस्था के कुछ अनुभवों को लिखिये ? .....
.....
.....।

विभिन्न अवस्थाओं में भाषा विकास (Language Development)

भाषा विकास बौद्धिक विकास की सर्वाधिक उत्तम कसौटी मानी जाती है। बालक को भाषा का ज्ञान सर्वप्रथम परिवार से होता है। तत्पश्चात् विद्यालय एवं समाज के सम्पर्क में उसका भाषायी ज्ञान विकसित होता है।

शैशवावस्था में भाषा भाषा विकास (Language Development in Infancy)

जन्म के समय बालक क्रन्दन करता है। यह उसकी पहली भाषा होती है। इस समय न तो उसे स्वरों का ज्ञान होता है और न व्यंजनों का। 25 सप्ताह तक शिशु जिस प्रकार की ध्वनियां निकालता है, उनमें स्वरों की संख्या अधिक होती है।

10 मास की अवस्था में शिशु पहला शब्द बोलता है, जिसे वह बार–बार दोहराता है।

इन्हें भी जाने –अध्ययन के आधार पर सामान्यतया भाषा विकास निम्न क्रम में होता है

भाषा विकास की प्रगति	
आयु	शब्द
जन्म से 8 मास	0
10 मास	1
1 वर्ष	3
1 वर्ष 3 माह	19
1 वर्ष 6 माह	22
1 वर्ष 9 माह	118
2 वर्ष	212
4 वर्ष	1550
5 वर्ष	2072
6 वर्ष	2562

शैशवावस्था में भाषा विकास जिस ढंग से होता है। उस पर उसकी संस्कृति व सभ्यता का प्रभाव पड़ता है। शिशु की भाषा पर उसकी बुद्धि, परिवार व विद्यालय का वातारण प्रभाव डालता है। जिन बच्चों में तुतलाना एवं हकलाना आदि दोष होते हैं, उनमें भाषा विकास की गति धीमी होती है।

गतिविधि– प्रशिक्षक प्रशिक्षुओं से चर्चा करें कि शिशु के भाषा विकास के लिए किस प्रकार की शैक्षिक गतिविधियां कराई जा सकती है। प्रशिक्षुओं से निम्न बिन्दु उभर कर आ सकते हैं–

- दैनिक जीवन में प्रयोग आने वाले शब्दों को शिशुओं से दोहराने को कहना। (1 वर्ष से ऊपर के शिशुओं के लिए)
- छोटी–छोटी कहानी व कविता सुनाकर फिर बच्चों से दोहराने को कहना। (3–4 वर्ष के बच्चों से)

बाल्यावस्था में भाषा भाषा विकास (Language Development in Childhood)

आयु के साथ–साथ बालकों के सीखने की गति में वृद्धि होती है। इस अवस्था में बालक शब्द से लेकर वाक्य विन्यास तक की सभी क्रियाएं सीख लेता है।

इन्हें भी जानें– हाइडर नामक मनोवैज्ञानिक ने अध्ययन करके निम्न परिणाम प्राप्त किये–

- लड़कियों की भाषा का विकास बालकों की अपेक्षा तेजी से होता है।
- लड़कों की अपेक्षा लड़कियों के वाक्यों में शब्द संख्या अधिक होती है।
- अपनी बात को ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता लड़कियों में अधिक होती है।

भाषा के विकास में समुदाय, घर, विद्यालय परिवार की आर्थिक व सामाजिक स्थिति का प्रभाव अधिक पड़ता है। वस्तुओं को देखकर उनका प्रत्यय ज्ञान उन्हें हो जाता है और उसके बाद उसकी अभिव्यक्ति में आनन्द आता है। प्रत्यय (concept) ज्ञान स्थूल से सूक्ष्म की ओर विकसित होता है। इस प्रकार भाषा ज्ञान मूर्त से अमूर्त की ओर होता है।

गतिविधियां– प्रशिक्षणकर्ता प्रशिक्षुओं को गोले में बैठाकर उनसे चर्चा करेंगे कि बालकों के भाषा विकास के लिए किस प्रकार की गतिविधियां कराई जा सकती है। प्रशिक्षुओं के माध्यम से निम्नबिन्दु उभर कर आ सकते हैं :–

- कहानी और घटनाओं को सुनाकर उन्हें क्रम से दोहराना।
- बच्चे अपनी कल्पना के आधार पर कोई कहानी सुनायें।

किशोरावस्था में भाषा भाषा विकास (Language Development in Adolescence)

इस अवस्था में बच्चे अपनी भाषा को अधिक साहित्यिक बना लेते हैं। किशोर/किशोरी में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों से जो संवेग उत्पन्न होते हैं, उससे उनकी कल्पना शक्ति का विकास होने लगता है और वो कविता, कहानी व चित्र के माध्यम से अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हैं।

किशोरावस्था में शब्दकोष भी विकसित होता है वे कभी–कभी गुप्त (code) भाषा का भी प्रयोग करते हैं। यह भाषा कुछ प्रतीकों (symbols) के माध्यम से लिखी जाती है। जिसका अर्थ वे ही जानते हैं जिनको कोड आता है। भाषा विकास का प्रभाव उसके चिन्तन पर भी पड़ता है।

इन्हें भी जाने

भाषा विकास पर बच्चे के स्वास्थ्य (शारीरिक व मानसिक, स्वास्थ्य) बुद्धि व वाणी दोष का प्रभाव पड़ता है।

क्रियाकलाप –प्रशिक्षु बच्चों की पाठ्यसहगामी क्रियाओं पर बल दे। जैसे नाटक, कविता, संगीत, कहानी आदि जिससे उनकी भाषा का विस्तार हो सके।

इन्हें भी जाने–

भाषा विकास के दोष हैं–

- ध्वनि दोष
- लय दोष
- बोलने के अंगों में दोष
- सुनने में दोष

पुनरावृत्ति विन्दु–

- भाषा विकास स्वतः होती है।
- भाषा अनुकरण से सीखी जाती है।
- जन्म के समय शिशु केवल रोता है।
- दो वर्ष का बालक अपनी आवश्यकता पूर्ति करने तक के लिए सभी शब्दों का ज्ञान कर लेता है।
- बाल्यावस्था में शब्द भण्डार बढ़ता है।
- किशोरावस्था में किशोर/किशोरियों की भाषा साहित्यिक हो जाती है।

बोध प्रश्न

- दो वर्ष तक शब्दों का ज्ञान कितना होता है ? .....
  .....।
- किशोरों की भाषा साहित्यिक क्यों होती है ? .....
  .....
  .....।

विभिन्न अवस्थाओं में सृजनात्मक विकास (Development of Creativity in different stages)

शैशवावस्था में सृजनात्मक विकास (Development of Creativity in Infancy)

सृजनात्मकता उस योग्यता को बताती है, जो किसी वस्तु को खोजने या सृजन से सम्बन्धित होती है। शैशवावस्था में शिशु बहुत कल्पनाशील होता है। वो अपनी कल्पना के आधार पर ही नई वस्तुओं का सृजन करता है, जैसे –कागज की नाव बनाना, पंतग बनाना, उड़ने वाला जहाज बनाना, कागज पर तरह–तरह के चित्र बनाना व कल्पना के आधार पर उनमें रंग भरना आदि। शैशवावस्था में सृजनात्मक क्षमता का विकास भली भांति होना आवश्यक है, क्योंकि इसमें हम बालक की कल्पना शक्ति का पूरा प्रयोग करते हैं। इस क्षमता का विकास करके हम उनके भावी जीवन का निर्माण करते है व शिशु के व्यक्तित्व का उचित विकास करते हैं।

गतिविधियां–

प्रशिक्षक प्रशिक्षुओं से चर्चा करें और उनसे पूछे कि वो शिशुओं के सृजनात्मक विकास के लिए क्या क्रिया कलाप करवा सकते हैं। जो बिन्दु उभर कर आते हैं, वो निम्नलिखित हो सकते हैं–

- कागज, पेन्सिल व रंग देकर उस पर चित्र बनाने व रंग भरने को कहें।
- शिशुओं को रंग बिरंगे ब्लॉक देकर उससे विभिन्न वस्तु जैसे–घर, पुल या डिजाइन बनाने को कहें।
- व्यर्थ की वस्तुएं जैसे टूटी चूड़ी, चॉकलेट की पन्नी, बोतल के ढक्कन आदि बच्चों को देकर उनसे मनचाही वस्तु को बनाने को कहें।

बाल्यावस्था में सृजनात्मक विकास (Development of Creativity in Childhood)

प्रत्येक बच्चे में सृजन की क्षमता जन्मजात होती है, छोटे बच्चों के खेलों में यह सृजनात्मक शक्ति स्पष्ट रूप से झलकती है। रचनात्मक कार्यों द्वारा वह सीखते और आगे बढ़ते हैं। इसके लिए हम बच्चों को कुछ स्वयं करने का अवसर दें, आस पास की वस्तुओं का ज्ञान वो अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त करें और अनुभव करें। बच्चों की कल्पना निरीक्षण व स्मरण शक्ति के विकास द्वारा ही उनकी सृजनात्मक क्षमता विकसित होगी। सृजनात्मक क्षमता के विकास द्वारा ही वो भावी जीवन की तैयारी करेंगे।

बच्चों की सृजनात्मक शक्ति का विकास हम कई प्रकार की क्रियाओं द्वारा कर सकते हैं जैसे खेल, कला, नृत्य, अभिनय और बेकार की वस्तुओं से सामग्री तैयार करना आदि।

क्रियाकलाप–

प्रशिक्षक प्रशिक्षु से बताएं कि वे बालकों के सृजनात्मक क्षमता के विकास के लिए निम्नकार्य करवा सकते हैं–

- चित्रकला एवं रंगना।
- छपाई–भिण्डी व प्याज आदि के ठप्पे लगायें।
- मिट्टी के विभिन्न सामान बनवाना।
- कागज द्वारा कलाकृतियां तैयार करवाना।
- नाटकीय खेल
- व्यर्थ वस्तुओं से सामग्री निर्माण आदि।

किशोरावस्था में सृजनात्मक शक्ति का विकास (Creative Development in Adolescence)

किशोरावस्था परिवर्तन की अवस्था है। इस अवस्था में उसके अन्दर बहुत सारे शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक व सामाजिक परिवर्तन होते हैं। वह न तो बच्चा रहता है न प्रौढ़। इस कारण से वो अपने को वातावरण से भलीभांति समायोजित नही कर पाते। उसमें कल्पना की अधिकता होती है, वह सृजनात्मक कार्य करके अपनी कल्पना को यथार्थ का रूप देना चाहता है।

यदि किशोर/किशोरी की सृजनात्मक क्षमता को उचित वातावरण देकर उसका अधिकतम विकास किया जाये, तो वो जीवन में बहुत महत्वपूर्ण उपलब्धियां हासिल कर सकता है तथा अपनी शक्ति का सदुपयोग करके अपने को कुण्ठा व निराशा से बचा सकता है।

किशोर/किशोरी में सृजनात्मक शक्ति के विकास के लिए विद्यालय में तरह–तरह की पाठ्यसहगामी क्रियाओं का आयोजन करना चाहिये। जैसे वाद–विवाद प्रतियोगता, साहित्यिक गोष्ठियां, नाटक एवं संगीत, नाटकीय खेल, व्यर्थ सामग्री का उपयोग करके कुछ नई वस्तु की रचना आदि। सृजनात्मक क्षमता का विकास करके ही उन्हें हम कुशल डॉक्टर, इंजीनियर, साहित्यकार, शिक्षक या समाज का मार्गदर्शन करने वाला बनने में सहायता कर सकते हैं।

सोंचे और बताएं कि किशोरावस्था में सृजनात्मक क्षमता का विकास करने के लिए आप क्या उपाय करेंगे। उनकी एक सूची तैयार करिये।

पुनरावृत्ति बिन्दु–

- सृजनात्मकता वह योग्यता है जो किसी वस्तु को खोजने या सृजन से सम्बन्धित होती है।
- शैशवावस्था, बाल्यावस्था व किशोरावस्था में सृजनात्मक क्षमता का विकास नितान्त आवश्यक है।
- सृजनात्मक क्षमता का विकास विभिन्न प्रकार की पाठसहगामी क्रियाओं द्वारा कर सकते हैं।

बोध प्रश्न–

- शैशवावस्था में सृजनात्मक क्षमता के विकास के लिए क्या–क्या गतिविधियां कराई जा सकती है ?.....
  .....।
- खेलों द्वारा सृजनात्मक शक्ति किस प्रकार विकसित होती है ?.....
  .....।

मूल्यांकन

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

- शैशवावस्था में शारीरिक विकास की गति कैसी होती है ?
- किशोरावस्था की मुख्य एक विशेषता बताइये।

खाली स्थान भरिये

- शिशुओं में जिज्ञासा की प्रवृत्ति बहुत .....होती है।
- बाल्यावस्था में विकास में .....आ जाता है।

अतिलघुउत्तरीय प्रश्न

- बाल्यावस्था की मुख्य दो विशेषताएं बताइये।
- शैशवावस्था में मानसिक विकास की कोई एक विशेषता बताइये।

लघु उत्तरीय प्रश्न

- किशोरावस्था में सामाजिक भावना का विकास किस रूप से पाया जाता है ?
- सृजनात्मक विकास किसे कहते हैं ?

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

- बुद्धि परीक्षणों की क्या उपयोगिता है ?
- किशोरावस्था को परिवर्तन की अवस्था क्यों कहते हैं ?

व्यक्तित्व का विकास– अर्थ, प्रकार (अन्तर्मुखी, बहिर्मुखी, उभयमुखी

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- व्यक्तित्व का विकास (अवधारणा)
- व्यक्तित्व का अर्थ
- व्यक्तित्व के प्रकार– अन्तर्मखी, बहिर्मुखी और उभयमुखी

सामान्यतः व्यक्तित्व से अभिप्राय व्यक्ति के रूप, रंग, कद, लम्बाई, चौड़ाई अर्थात् शारीरिक संरचना, व्यवहार तथा मृदुभाषी होने से लगाया जाता है। ये समस्त गुण व्यक्ति के समस्त व्यवहार का दर्पण है। वास्तव में व्यक्तित्व केवल जीवन के विभिन्न पक्षों का सम्मिश्रण मात्र नहीं है। इसके विकास या गठन का क्रम अत्यन्त व्यापक तथा जटिल है। व्यक्तित्व अनेक कारकों या व्यवहारों का समग्र रूप या सम्मिश्रण है।

व्यक्तित्व की अवधारणाः अर्थ व परिभाषा

व्यक्तित्व अंग्रेजी के पंर्सनेल्टी (Personality) शब्द का रूपान्तर है। अंग्रेजी के इस शब्द की उत्पत्ति यूनानी भाषा के 'पर्सोना' (Persona) शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है– **'नकाब'**। यूनानी लोग नकाब या मुखौटा पहनकर मंच पर अभिनय करते थे, ताकि दर्शकगण यह न जान सकें कि अभिनय करने वाला कौन है ?

व्यक्तित्व का अर्थ मनुष्य के व्यवहार की वह शैली है जिसे वह अपने आन्तरिक तथा बाह्य गुणों के आधार पर प्रकट करता है। व्यक्ति के बाह्य गुणों का प्रकाशन उसकी पोशाक, वार्ता का ढंग, आंगिक अभिनय, मुद्राएँ, आदत तथा अन्य अभिव्यक्तियाँ हैं। मनुष्य के आंतरिक गुण हैं उसकी अन्तःप्रेरणा या उद्देश्य, संवेग, प्रत्यक्ष, इच्छा आदि। व्यक्तित्व किसी व्यक्ति के समस्त मिश्रित गुणों का वह प्रतिरूप है जो उसकी विशेषताओं के कारण उसे अन्य व्यक्तियों से भिन्न इकाई के रूप में स्थापित करता है। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के प्रतिबिम्ब का प्रेक्षण उसके अवलोकन या उसके द्वारा की गई अनुक्रिया के आधार पर अनुमानित किया जा सकता है।

परिभाषाएँ–

1. मन के अनुसार– ''व्यक्तित्व एवं व्यक्ति के गठन, व्यवहार के तरीकों, रूचियों, दृष्टिकोणों, क्षमताओं और तरीकों का सबसे विशिष्ट संगठन है।''

2. बिग व हण्ट के अनुसार– ''व्यक्तित्व एक व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यवहार–प्रतिमान और इसकी विशेषताओं के योग का उल्लेख करता है।''

3. वारने के अनुसार–''व्यक्तित्व, व्यक्ति का सम्पूर्ण मानसिक संगठन है, जो उसके विकास की किसी भी अवस्था में होता है।''

4. रैक्स के अनुसार– ''व्यक्तित्व समाज द्वारा मान्य तथा अमान्य गुणों का संगठन है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि व्यक्तित्व, व्यक्ति के विषय में एक समग्र धारणा है।

बोध प्रश्न

व्यक्तित्व की संक्षिप्त परिभाषा लिखें।.....
.....।

व्यक्तित्व के प्रकार

व्यक्तित्व के सन्दर्भ में अलग–अलग शिक्षा शास्त्रियों ने अपने विचार पृथक–पृथक प्रकट किये है। इनमें से निम्नांकित तीन वर्गीकरण को साधारणतः स्वीकार किया जाता है, पर सबसे अधिक महत्वपूर्ण अन्तिम को माना जाता है–

1. शरीर रचना प्रकार
2. समाजशास्त्रीय प्रकार
3. मनोवैज्ञानिक प्रकार

1. शरीर रचना प्रकार–

जर्मन विद्वान क्रेश्मर ने शरीर रचना के आधार पर व्यक्तित्व के तीन प्रकार बताए हैं– (1) शक्तिहीन (2) खिलाड़ी (3) नाटा।

2. समाजशास्त्रीय प्रकार

स्प्रेंगर ने अपनी पुस्तक ''Types of Men" में व्यक्ति के सामाजिक कार्यों और स्थिति के आधार पर व्यक्तित्व के छः प्रकार बताए है; यथा–

(i) सैद्धान्तिक (ii) राजनीतिक (iii) आर्थिक (iv) धार्मिक (v) सामाजिक (vi) कलात्मक

3. मनोवैज्ञानिक प्रकार

मनोवैज्ञानिकों ने मनोवैज्ञानिक लक्षणों के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया है। मनोविश्लेषणवादी युग ने व्यक्तित्व को दो भागों में बाँटा है–

(i) अन्तर्मुखी (ii) बहिर्मुखी तथा दोनों के मिश्रित उभयोमुखी।

1. अन्तर्मुखी व्यक्तित्व– ऐसे व्यक्तित्व का व्यक्ति चिन्तनशील होता है तथा अपनी ही ओर केन्द्रित रहता है। इस व्यक्तित्व के लक्षण, स्वभाव, आदतें, अभिवृत्तियाँ आदि बाह्य रूप में प्रकट नहीं होते हैं। इसीलिए, इसको अन्तर्मुखी कहा जाता है। इसका विकास बाह्य रूप में न होकर आन्तरिक रूप में होता है। अन्तर्मुखी व्यक्तित्व की निम्नलिखित विशेषताएं है–

- ऐसे व्यक्ति का बाह्य जगत की वस्तुओं से कम अनुराग होता है।
- वे एकांकी होते है।
- वे कर्त्तव्य परायण होते है तथा समय का सदैव ध्यान रखते है।

- यह व्यवहार कुशल नहीं होता तथा हँसी, मजाक एवं व्यर्थ के छलों आदि में नहीं फँसता।
- युंग ने अन्तर्मुखी व्यक्तियों को विचार प्रधान, भावप्रधान, तर्क प्रधान व दिव्यदृष्टि प्रधान चार रूपों में विभक्त किया है।
- यह चिन्ताग्रस्त होते है तथा अपनी वस्तुओं व कष्टों के प्रति सजग होते है।
- ये भाव प्रधान होते है, आत्मचिन्तन करते है तथा आत्मोदार हेतु लीन रहते है।
- ये स्वयं के लिए चिन्तशील होते है तथा शान्त मुद्रा में रहते है।
- अच्छे लेखक होते हैं परन्तु अच्छे वक्ता नहीं क्योंकि चिन्तन का धरातल प्रबल होता है।
- ये प्रायः प्रतिक्रियावादी होते हैं तथा यथार्थ को अपने स्वभाव के अनुरूप ढालने का प्रयास करते है।

बहिर्मुखी व्यक्तित्व

ऐसे व्यक्तित्व वाले व्यक्ति की रूचि बाह्य जगत में होती है। वे अपने विचारों और भावनाओं को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते है। वे संसार के भौतिक और सामाजिक लक्ष्यों में विशेष रूचि रखते है। इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

- इनमें कार्यकुशलता की मात्रा अन्तर्मुखी से अधिक होती है।
- ये सबको प्रसन्न करने वाले होते है तथा प्रशंसकों से घिरे रहने की कामना करते हैं।
- ये विचार प्रधान तथा व्यवहार–कुशल होते हैं तथा निर्णय भी भावों के अनुरूप ही लेते हैं।
- वातावरण के साथ आसानी से अनुकूलन कर लेते है।
- आत्मचिन्तनशील नहीं होते परन्तु सभी के विचारों के आधार पर अपना विचार प्रकट करते हैं।
- बाह्य क्रियाओं की ओर संवेदनशील होते हैं।
- ये धारा प्रवाह बोलने वाले होते है।
- स्वयं की पीड़ा, परिस्थिति की चिन्ता नहीं करते व चिन्तामुक्त होते है।

सोचे– आप स्वयं किस प्रकार के व्यक्तित्व की विशेषता रखते हैं ?.....
..... /

3. उभयमुखी व्यक्तित्व

कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते है, जो दोनों का सम्मिश्रण होते हैं, उन्हें उभयोमुखी या विकासोन्मुखी कहते है।

इस प्रकार अलग–अलग व्यक्तियों के अलग–अलग गुण होने के कारण उनके दृष्टिकोण में अन्तर पाया जाता है। इनके दृष्टिकोणों का अध्ययन कर हम इनके व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों में विकास करने का प्रयास कर सकते हैं तथा उचित मार्गदर्शन परिवार में माता–पिता तथा विद्यालय में शिक्षक ले सकते हैं।

सोचें और विचार करें–

अपने आस–पास के वातावरण में रहने वाले व्यक्तियों में इन गुणों की खोज कर पहचाने व सूची बनाए कि वह किस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति है।

बोध प्रश्न–

- शरीर–रचना आधार पर व्यक्तित्व के प्रकार बताइए। .....
  .....।
- बहिर्मुखी व्यक्तित्व की चार विशेषताएं बताइए। .....
  .....।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. व्यक्तित्व से आप क्या समझते है ? व्यक्तित्व के प्रकारों पर प्रकाश डालिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अन्तर्मुखी तथा बहिर्मुखी व्यक्तित्व से आप क्या समझते हैं ? समझाइए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. क्रेश्मर ने कितनी तरह के व्यक्तित्व बताए हैं–

(i) चार (ii) तीन (iii) दो (iv) पाँच **उत्तर (ii) तीन**

व्यक्तित्व परीक्षण के तरीके एवं समायोजन के उपाय

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- व्यक्तित्व परीक्षण की विधियाँ
- समायोजन का अर्थ
- समायोजन के उपाय

मानव विकास के साथ–साथ उसके व्यक्तित्व का निर्धारण करना एक समस्या रही है। वर्तमान समय में सम्पूर्ण व्यक्तित्व का मूल्यांकन आवश्यक नहीं माना जाता है, बल्कि किसी प्रयोजन हेतु व्यक्तित्व का मापन आवश्यक होता है। अतः व्यक्तित्व मापन की विभिन्न विधियाँ अलग–अलग प्रयोजनों में प्रयोग की जाती है।

व्यक्तित्व परीक्षण या मापन की विधियाँ– व्यक्तित्व के मापन को तीन प्रकार की विधियों में बाँटा जा सकता है, जो निम्नलिखित है –

1. आत्मनिष्ठ विधियाँ 2. वस्तुनिष्ठ विधियाँ 3. प्रक्षेपण विधियाँ

1. **आत्मनिष्ठ या व्यक्तिगत विधियाँ** (subjective Methods) इन विधियों के माध्यम से हम व्यक्ति सम्बन्धी सूचना उसी व्यक्ति से या उसके मित्रों अथवा सम्बन्धियों से प्राप्त कर लेते हैं। इन विधियों का आधार उसके लक्षण, अनुभव, उद्देश्य, आवश्यकता, रुचियाँ और और अभिवृतियाँ आदि होती हैं। वह इनके माध्यम से सभी सूचनाएं देता है। इस विधि के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रविधियाँ आती हैं–

1– **आत्मकथा** (Autobiography) इस विधि के द्वारा अध्ययन किये जाने वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व गुणों को कुछ शीर्षकों में बाँट दिया जाता है, जिसके द्वारा वह अपने अनुभवों, उद्देश्यों, प्रयोजनों, रुचियों और अभिवृत्तियों का विवरण के आधार पर निश्चित मनोवैज्ञानिक निष्कर्ष निकालता है। परन्तु इस विधि में कुछ कठिनाइयाँ है।

2. **व्यक्ति–वृत्ति इतिहास** (case History) इस विधि के अन्तर्गत हम वंशानुक्रमीय एवं वातावरण सम्बन्धी तत्वों का अध्ययन करते हैं, जो व्यक्ति जीवन को प्रभावित करते हैं। यह विधि मुख्य रूप से आत्मकथा पर निर्भर करती हैं। इसमें विषयी के द्वारा बताये गये वृतान्त के अतिरिक्त परिवार, इतिहास, आय, चिकित्सा पद्धति, पर्यावरण एवं सामाजिक स्थिति आदि से भी सूचनाएँ एकत्रित की जाती है। यह विधि प्रायः असामान्य व्यक्तियों के अध्ययन में प्रयुक्त की जाती है।

3. **साक्षात्कार विधि** (Interview Method) इसमें साक्षात्कारकर्ता विषयी के आमने–सामने बैठकर बातचीत करते हैं। इसमें साक्षात्कार लेने वाले मनोविज्ञानी विषय के प्रेरकों, अभिवृत्तियों तथा लक्षणों का मूल्यांकन करते हैं। साक्षात्कर्ता में विषय को प्रभावित, सम्मोहित एवं गुमराह करके उसकी वास्तविकता का पता लगाने का गुण होना चाहिए।

4. सूची विधि या प्रश्नावली विधि (Inventory Method or Questionnaire Method)

इसमें विषयी के सामने एक प्रश्नावली प्रस्तुत की जाती है जिसमें 100 से लेकर 500 तक प्रश्न होते हैं। इसके उत्तर हाँ या नहीं से सम्बन्धित रहते हैं। यह विधि व्यक्तित्व मापन में सबसे अधिक उपयोग की जाती है। विषयी प्रश्नावली को पढ़ता जाता है और अपने उत्तरों को स्पष्ट करता जाता है। इनका प्रयोग व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों ही रूपों से किया जा सकता है।

2. **वस्तुनिष्ठ विधियाँ** (objective Methods) ये विधियाँ इस तथ्य पर आश्रित हैं कि उसका प्रत्यक्ष व्यवहार अवलोकनकर्ता को कैसा लगता है ? ये विधियाँ भी बुद्धि, रुचि एवं अभिरुचि को आधार मानकर क्रियाशील होती हैं। इसके प्रतिपादकों का विचार है कि व्यक्तित्व को समझने के लिए विषयी को जीवन के पर्यावरण में रखकर देखना चाहिए ताकि उसकी आदतें, लक्षण और चारित्रिक विशेषताएँ प्रकट हो सकें। वस्तुनिष्ठ विधि के प्रयोग की विभिन्न विधियाँ निम्नलिखित हैं –

(1) नियन्त्रित निरीक्षण (controlled observation) इस विधि का प्रयोग मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला में ही सम्भव है क्योंकि पर्यावरण एवं विषयी को नियन्त्रण में लेकर कार्य करना कठिन है। इसमें विषयी को कमरे में अकेला बैठाकर कोई कार्य करने के लिये दे दिया जाता है तथा उसकी क्रियाओं, हावभाव और प्रक्रिया का अवलोकन इस रूप से किया जाता है कि विषयी निरीक्षणकर्ता को देख न सके। वर्तमान समय में विषयी के व्यवहार को चलचित्र के माध्यम से भी नोट किया जाता है। इस प्रकार से सम्पूर्ण व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जाता है।

(2) क्रम–निर्धारण मापनी (Rating Scale) क्रम निर्धारण मापनी में गुणात्मक व्यवहार का अवलोकन किया जाता है। इसमें एक लम्बी रेखा के नीचे खण्डशः कुछ विवरणात्मक विशेषण या वाक्यांश लिखे रहते हैं। इसके एक सिरे पर वाक्यांश की चरम सीमा होती है और दूसरे पर विपरीत गुणों की चरम सीमा होती है। क्रम निर्धारक मापनी पर लक्षणों को चिन्हित कर देते हैं, जिससे यह पता लग जाता है कि अमुक व्यक्ति में वह गुण किस सीमा तक मिलता है।

(3) प्रक्षेपण विधियाँ (Projective Techniques) इन विधियों के माध्यम से विषयी अपने प्रतिचारों को आन्तरिक लक्षणों, भावदशाओं, अभिवृत्तियों एवं हवाई कल्पनाओं में पिरोकर कहानी के रूप में प्रकट करता है। इनके आधार पर उसके व्यक्तित्व का मूल्यांकन आसानी से कर लिया जाता है।

बोध प्रश्न–

- व्यक्तित्व का मापन किस प्रकार किया जाता है ? समझाइए .....
  ..... ।.

व्यक्तित्व का समायोजन (Adjustment of Personality)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अन्त समय तक समाज में ही रहना चाहता है। वह उसी समय अधिक प्रसन्न दिखाई देता है, जबकि वह स्वयं की रुचि, पसन्द और अभिवृत्तियों वाले समूह को प्राप्त कर लेता है। इस व्यवहारिक गतिशीलता का ही नाम 'समायोजन' है। जब व्यक्ति अप्रसन्न दिखाई देता है तो यह उसके व्यवहार का कुसमायोजन होता है।

समायोजन का अर्थ (Meaning of Adjustment) जब व्यक्ति गतिशीलता का प्रयोग आवश्यकताओं की पूर्ति और आत्म–पुष्टि के लिये करता है तो इसे 'समायोजन की प्रक्रिया' कहा जाता है।

गेट्स एवं अन्य के अनुसार – ''समायोजन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने और अपने वातावरण के बीच सन्तुलित सम्बन्ध रखने के लिये अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है।'' इस प्रकार स्पष्ट होता है कि व्यक्ति स्व–विकास के लिये प्रेरकों की सहायता से परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करता है।

समायोजन की प्रविधियाँ (Methods of Adjustment)

समायोजन को प्रभावित करने में निराशा, मानसिक–संघर्ष और तनाव प्रमुख कारक होते हैं। ये तीनों अपने दुष्प्रभावों के कारण व्यक्ति को कुसमायोजित व्यवहार करने को बाध्य कर देते हैं। अतः इन तीनों पर विजय प्राप्त करना ही व्यक्ति को समायोजित करना हो जाता हैं। ये प्रविधियाँ निम्नलिखित हैं–

(1) प्रत्यक्ष विधियाँ (Direct Methods) जब व्यक्ति चेतनावस्था में रहकर समायोजन को स्थापित करने के लिये प्रयत्न करता है तो वे प्रयत्न प्रत्यक्ष विधियों के अन्तर्गत माने जाते हैं। इन उपायों को लागू करने में वह अपना विवेक, तर्कशक्ति एवं बौद्धिक क्षमता आदि का सहारा लेता है। इन विधियों का प्रयोग विशेष रूप से समायोजन की किसी विशेष समस्या के स्थायी समाधान के लिये किया जाता है। इन उपायों के अन्तर्गत निम्नलिखित विधियाँ आती हैं–

1. बाधाओं का समाधान (Solving of obstacles) व्यक्ति अपनी आवश्यकता पूर्ति में आने वाली बाधाओं को समाप्त करने का चेतनात्मक प्रयत्न करते हैं। यदि इस प्रकार से बाधा समाप्त हो जाती है तो उसका मानसिक तनाव समाप्त हो जाता है। इस चेतनात्मक प्रयत्नों के अन्तर्गत अभ्यास और लगन महत्वपूर्ण कार्य करते हैं।

2. अन्य मार्ग खोजना (To Find other ways) जब कोई व्यक्ति अपने लक्ष्य की पूर्ति में उत्पन्न विभिन्न बाधाओं को किसी कारणवश दूर नहीं कर पाता है, तो किसी अन्य मार्ग या 'हल' को खोजना पड़ता है। इस प्रकार उसका मानसिक तनाव कम हो जाता है और वह समायोजन स्थापित कर लेता है।

3. उद्देश्य में परिवर्तन (change in Aims) जब व्यक्ति अपने लक्ष्य एवं उद्देश्य में सफल नहीं हो पाता है और न उत्पन्न बाधाओं पर विजय प्राप्त कर पाता है तो वह उस उद्देश्य को त्यागकर समानान्तर उद्देश्य को ग्रहण कर लेता है।

4. विश्लेषण एवं निर्णय (Analysis and Decision) जब मनुष्य परिस्थितियों से घिर जाता है तो वह मानसिक सन्तुलन खो बैठता है। उसे लक्ष्य प्राप्त करने के लिये कोई उपाय खोजना पड़ता है। यह रास्ता परिस्थिति का सही विश्लेषण और उचित निर्णय करने पर ही निर्भर होता है।

2. अप्रत्यक्ष विधियाँ (Indirect Methods) मानसिक सामान्यता को बनाये रखने के लिए व्यक्ति को अचेतन क्रियाओं की भी सहायता लेनी पड़ती है। अतः अप्रत्यक्ष उपाय वे हैं, जिन्हें वह अचेतन रूप से अपनाता है। तनावपूर्ण परिस्थिति एवं दुःख से बचने के लिए अप्रत्यक्ष उपायों का प्रयोग किया जाता है। इसको मनोवैज्ञानिक 'सुरक्षा प्रक्रियाएँ' कहते हैं क्योंकि वे व्यक्ति के आत्मसम्मान की रक्षा करती हैं तथा उसका बचाव उस समय करती हैं जब वह निराशा के कारण चिन्ताग्रस्त होता है, अतः अप्रत्यक्ष विधियाँ निम्नलिखित हैं–

(1) शोधन (sublimation) शोधन अचेतन मन की वह मानसिक प्रक्रिया है, जिसके अन्दर व्यक्ति की मूल संवेगात्मक शक्ति, आवश्यकताएँ आदि को कृत्रिम पक्ष की ओर मोड़ दिया जाता है, जिसे समाज की स्वीकृति प्राप्त है।

(2) पृथक्करण (Withdrawal) दुःख या कष्ट आने पर व्यक्ति स्वयं को उससे अलग कर देता है। ऐसे व्यवहार को पलायनवादी व्यवहार की संज्ञा दी जाती है। ये व्यवहार समाज विरोधी होते हैं।

(3) प्रतिगमन (Regression) प्रतिगमन की युक्ति तब देखने में आती है, जब व्यक्ति निराशा द्वारा उत्पन्न चिन्ता के कारण व्यवहार के प्रारम्भिक रूपों में वापस चला जाता है।

(4) तादात्म्य (Identification) तादात्म्य से तात्पर्य दूसरे व्यक्ति के गुणों को अपने व्यक्तित्व में ग्रहण कर लेने से है। जब व्यक्ति संसार में अपने महत्व को समझ लेता है तो सीखने की कोशिश करता है।

(5) निर्भरता (Dependency) जब व्यक्ति किसी कार्य में सभी प्रयत्नों के बावजूद असफलता प्राप्त करता है तो वह स्वयं की समस्या को किसी योग्य व्यक्ति को सौंप देता है और उसके निर्देशों का पालन करके जीवन व्यतीत करने लगता है।

(6) युक्तिकरण (Rationalization) इस युक्ति के अन्तर्गत व्यक्ति वास्तविक प्रेरक को छिपाकर अन्य प्रेरकों को दोषी ठहरा देता है। इस प्रकार व्यक्ति की क्षमता का कोई दोष नहीं माना जाता है बल्कि दूसरे के ऊपर दोषारोपण हो जाता है।

(7) दमन (Repression) कुछ व्यक्ति चिन्ता को समाप्त करने के लिए दमन का प्रयोग करते हैं और उससे छुटकारा प्राप्त कर लेते हैं।

(8) प्रक्षेपण (Projection) प्रक्षेपण का कार्य चिन्ताजनक आवेगों से रक्षा करता है। इस युक्ति के अन्तर्गत किसी अन्य प्रेरकों को थोपकर संघर्ष के स्रोत को छिपा लिया जाता है।

(3) क्षतिपूरक विधियाँ (compensatory Methods) यह प्रकृति का नियम है कि वह मानव को किसी क्षेत्र में सफल और किसी में असफल बताती है। अतः जब वह एक क्षेत्र में असफल या स्वयं में कमी अनुभव करता है तो अन्य क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार से उत्पन्न तनाव समाप्त हो जाता है। इस विधि को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनो ही विधियों को प्रयोग में लाया जाता है।

(4) आक्रामक विधियाँ (Aggressive Methods) आक्रामक विधि से तात्पर्य व्यक्ति द्वारा उत्पन्न विरोधात्मक व्यवहार से है, जिसमें उसके द्वारा बाधा या रूकावट का आक्रामक व्यवहार के द्वारा सामना किया जाता है। इस विधि से व्यक्ति का मानसिक तनाव शिथिल होकर समाप्त हो जाता है। आक्रामक उपायों को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दो रूपों मे प्रयोग किया जाता है। प्रत्यक्ष आक्रामकता वह है, जिसमें व्यक्ति उसी व्यक्ति या वस्तु पर आक्रामण करता है जो उसके असन्तोष का कारण होता है। 'अप्रत्यक्ष आक्रामकता' वह है जिसमें व्यक्ति असन्तोषजनक परिस्थिति पर आक्रमण न करके अन्य ढंग से आक्रामक व्यवहार करके मानसिक तनाव को दूर करते हैं।

विचार करें–

- आक्रामक विधि व्यक्तित्व समायोजन में कैसे सहायता करती है ? स्पष्ट करें।.....
  .....।
- मानसिक समायोजन प्रविधियों में प्रत्यक्ष प्रविधि श्रेष्ठ है अथवा अप्रत्यक्ष ? और क्यों ?

मूल्यांकन

- व्यक्तित्व मापन की विधियों को समझाइये ?
- समायोजन का अर्थ स्पष्ट कीजिए तथा समायोजन की प्रविधियों पर प्रकाश डालिए ?

वैयक्तिक भिन्नता – अर्थ, कारक एवं महत्व

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- वैयक्तिक भिन्नता का अर्थ
- वैयक्तिक भिन्नता के प्रभावी कारक
- वैयक्तिक भिन्नता का महत्व

प्रत्येक प्राणी अपने जन्म से ही विशेष शक्तियों को लेकर जन्म लेता है। ये विशेषताएँ उसको माँ एवं पिता के पूर्वजों से हस्तान्तरित की गयी होती है। इसी के साथ पर्यावरण भी छात्र के विकास पर प्रभाव डालता है। अतः स्पष्ट है कि सभी छात्र एक दूसरे से भिन्न होते है। एक कक्षा या एक समूह के विद्यार्थियों में विभिन्न प्रकार की भिन्नताएँ होना असाधारण बात नहीं है। ये भिन्नताएँ विद्यार्थियों में विभिन्न विशेषताओं के रूप में मिलती हैं।

वैयक्तिक भिन्नता का अर्थ–

जब दो बालक विभिन्न समानताएँ रखते हुए भी आपस में भिन्न व्यवहार करते हैं तो इसे ''वैयक्तिक भिन्नता' कहा जाता है। वैयक्तिक भिन्नता से अभिप्राय है कि प्रत्येक व्यक्ति में जैविक, मानसिक, सांस्कृतिक, संवेगात्मक अन्तर पाया जाना। इसी अन्तर के कारण एक व्यक्ति, दूसरे से भिन्न माना जाता है। अतः कोई भी दो व्यक्ति समान नहीं होते। यहाँ तक कि जुड़वाँ बच्चों में भी असमानता पाई जाती है। इस दृष्टि से वैयक्तिक भिन्नता प्रकृति द्वारा प्रदत्त स्वाभाविक गुण है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने वैयक्तिक भिन्नता को निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया है–

1. स्किनर के अनुसार– ''व्यक्तिगत विभिन्नता में सम्पूर्ण व्यक्तित्व का कोई भी ऐसा पहलू सम्मिलित हो सकता है, जिसका माप किया जा सकता है।''

2. टायलर के अनुसार– ''शरीर के आकार और स्वरूप, शारीरिक गति सम्बन्धी क्षमताओं, बुद्धि, उपलब्धि, ज्ञान, रूचियों, अभिवृत्तियों और व्यक्तित्व के लक्षणों में माप की जा सकने वाली विभिन्नताओं की उपस्थिति सिद्ध की जा चुकी है।''

यदि हम उपर्युक्त कथनों का विश्लेषण करें, तो स्पष्ट होता है कि व्यक्तिगत भिन्नताओं के अन्तर्गत किसी एक विशेषता को आधार मानकर हम अन्तर स्थापित नहीं करते बल्कि सम्पूर्ण व्यक्तित्व के आधार पर अन्तर करते हैं।

बोध प्रश्न–

- वैयक्तिक भिन्नता का अर्थ स्पष्ट कीजिए .....
  .....।
- वैयक्तिक विभिन्नताओं की एक परिभाषा लिखिए .....
  .....।

वैयक्तिक भिन्नता के प्रभावी कारक

वैयक्तिक भिन्नता का प्रभाव अधिगम प्रक्रिया तथा उसकी उपलब्धि पर पड़ता है। बुद्धि तथा व्यक्तित्व, वैयक्तिक भिन्नता के आधार हैं। इसके कारण सीखने की क्रिया प्रभावित होती है। वैयक्तिक विभिन्नताओं के अनेक कारण हैं, जिनमें से महत्वपूर्ण कारक निम्नांकित हैं–

1. वंशानुक्रम– वंशानुक्रम में वे सभी जीन्स सम्मिलित हैं, जो एक बालक को उसके माता–पिता से गर्भधारण के समय प्राप्त होते है। वंशानुक्रम एक प्रकार की वंशपरम्परागत शक्ति है जिसके द्वारा माता–पिता और पूर्वजों के गुण नवनिर्मित शिशु में स्थानान्तरित होते है। इसमें शारीरिक और मानसिक, दोनों प्रकार के गुणों का स्थानान्तरण होता है। मन भी वंशानुक्रम को व्यक्तिगत भिन्नताओं का कारण स्वीकार करते हुए लिखते है कि – ''हम सबका जीवन एक ही प्रकार से आरम्भ होता है। फिर भी इसका क्या कारण है कि जैसे–जैसे हम बड़े होते है, हम लोगों में अन्तर होता जाता है। इसका एक यही उत्तर है कि हम सबका वंशानुक्रम भिन्न–भिन्न है।

2. वातावरण– वैयक्तिक भिन्नताओं का दूसरा महत्वपूर्ण कारण है– वातावरण मनोवैज्ञानिकों का तर्क है कि व्यक्ति जिस प्रकार के सामाजिक वातावरण में निवास करता है, उसी के अनुरूप उसका व्यवहार, रहन–सहन, आचार–विचार आदि होते हैं। अतः विभिन्न सामाजिक वातावरणों में निवास करने वाले व्यक्तियों में भिन्नताओं का होना स्वाभाविक है। यही बात भौतिक और सांस्कृतिक वातावरणों के विषय में भी कही जा सकती है। वातावरण कारक का शारीरिक और मानसिक विकास, दोनों ही क्षेत्रों में प्रभाव है। उपयुक्त वातावरण के अभाव में शारीरिक व मानसिक योग्यताओं का सामान्य विकास सम्भव नहीं है। अतः कहा जा सकता है कि उपयुक्त वातावरण के अभाव में वंशानुक्रम द्वारा प्रदान की हुई विशेषताओं का सामान्य विकास सम्भव नहीं है।

- वैयक्तिक भिन्नता एवं वातावरण में सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए।

3. जाति, प्रजाति व देश

एक देश में रहने वाली विभिन्न जातियों और प्रजातियों में अन्तर होता है। भारत में आर्य और द्रविणों में अन्तर स्पष्ट है। इसी प्रकार से हिन्दुओं के विभिन्न वर्गों में अन्तर स्पष्ट होता है। इन अन्तरों पर वंशानुक्रम एवं पर्यावरण के प्रभाव प्रमुख होते है। इसी प्रकार नीग्रो प्रजाति की अपेक्षा श्वेत प्रजाति अधिक बुद्धिमान और कार्यकुशल होती है। वैयक्तिक भिन्नताओं के कारण ही हमें विभिन्न देशों के व्यक्तियों को पहचानने में किसी प्रकार की कठिनाइयों नहीं होती है।

4. आयु व बुद्धि

वैयक्तिक भिन्नता का एक कारण आयु और बुद्धि भी है। आयु के साथ–साथ बालक का शारीरिक, मानसिक और संवेगात्मक विकास होता है। इसीलिए विभिन्न आयु के बालकों में

बोध प्रश्न

- **आयु एवं बुद्धि के सह–सम्बन्ध को समझाइए।**

अन्तर मिलता है। बुद्धि जन्मजात गुण होने के कारण किसी को प्रतिभाशाली और किसी को मूढ़ बनाकर अन्तर की स्पष्ट रेखा खींच देती है।

5. शिक्षा और आर्थिक दशा–

शिक्षा व्यक्ति को शिष्ट गम्भीर विचार–शील बनाकर अशिक्षित व्यक्ति से उसे भिन्न कर देती है। निम्न आर्थिक दशा अर्थात् गरीबी को सभी तरह के पापों और दुर्गुणों का कारण माना जाता है। गरीबी के कारण ही लोग चोरी, हत्या जैसे, जघन्य अपराध को भी गलत नहीं मानते। परन्तु ये लोग उन व्यक्तियों से पूर्णतया भिन्न हैं, जो उत्तम आर्थिक दशा के कारण प्रत्येक कुकर्म को अक्षम्य अपराध समझते है।

विचार करें–
- **आर्थिक दशा, शिक्षा को कैसे प्रभावित करती है।**

6. लिंग भेद

वैयक्तिक भिन्नता का एक महत्वपूर्ण कारक लिंगभेद भी है। इस भेद के कारण बालक और बालिकाओं की शारीरिक बनावट, संवेगात्मक विकास की कार्यक्षमता में अन्तर मिलता है। स्किनर का विचार है कि, ''बालिकाओं में स्मृति योग्यता अधिक तथा बालकों में शारीरिक कार्य करने की क्षमता अधिक होती है। बालक गणित और विज्ञान में बालिकाओं से आगे होते है, जबकि बालिकायें भाषा और सुन्दर हस्तलेख में बालकों से आगे होती है। बालकों पर सुझाव का कम प्रभाव पड़ता है, पर बालिकाओं पर अधिक।

इस प्रकार वैयक्तिक भिन्नता के अनेक कारक है। पर जहाँ तक विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने वालों छात्रों का प्रश्न है, उसकी भिन्नता के कुछ अन्य कारण प्रमुख है। इनका उल्लेख करते हुए गैरीसन व अन्य ने लिखा है– '' बालकों की भिन्नता के श्रेष्ठ कारणों में प्रेरणा, बुद्धि परिपक्वता, वातावरण सम्बन्धी उद्दीपन में विचलन है।''

बोध प्रश्न–

सत्य/असत्य बताओ

- वंशानुक्रम, वैयक्तिक भिन्नता का प्रमुख कारण है। स/अ
- सभी बालकों में मानसिक योग्यता का विकास समानता से नहीं होता। स/अ
- वैयक्तिक भिन्नता के तीन प्रभावी कारकों का उल्लेख कीजिए। .....
  .....
  .....।

वैयक्तिक विभिन्नता का महत्व

आधुनिक मनोवैज्ञानिक, बालकों की वैयक्तिक विभिन्नताओं को अत्यधिक महत्व देते है। उनका यह विश्वास है कि इन भिन्नताओं का ज्ञान प्राप्त करके शिक्षक अपने छात्रों का सर्वाधिक हित कर सकता है। साथ ही शिक्षा के परम्परागत स्वरूप में क्रानितकारी परिवर्तन करके उसे बालकों की वास्तविक

आवश्यकताओं के अनुकूल बना सकता है। औद्योगिक मनोविज्ञान, शिक्षा–मनोविज्ञान और बाल–मनोविज्ञान के क्षेत्रों में वैयक्तिक भिन्नताओं का महत्व सर्वाधिक है। कुछ प्रमुख महत्व इस प्रकार है–

- व्यक्तियों के वर्गीकरण में वैयक्तिक भिन्नताओं का ज्ञान आवश्यक है। यह वर्गीकरण विद्यालय में विद्यार्थियों का हो सकता है। विद्यार्थियों का मानसिक योग्यताओं के आधार पर वर्गीकरण कर यदि उन्हें शिक्षा दी जाती है तो शिक्षा उनके लिए बहुत उपयोगी हो जाती है।
- अध्ययनों में देखा गया है कि कक्षा में मानसिक दृष्टि से जितनी अधिक समजातीयता होगी, शिक्षा का प्रभाव उतना ही समान होगा।
- कक्षा में वैयक्तिक भिन्नताओं के अनुसार शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक है कि कक्षा में बालकों की संख्या अधिक से अधिक 20 होनी चाहिए। कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या कम होने से शिक्षक का विद्यार्थियों से व्यक्तिगत सम्पर्क व सम्बन्ध अच्छा होता है तथा वह विद्यार्थियों से उनके स्वभाव के अनुसार कार्य करवा सकता है।
- एक ही कक्षा के बालकों की रूचियों, अभिवृत्तियों एवं मानसिक योग्यताओं में अन्तर होने के कारण पाठ्यक्रम का विभिन्नीकरण अत्यन्त आवश्यक है। सबको अपनी रूचियों, योग्यताओं और इच्छाओं के अनुसार विषयों के चयन में छूट होनी चाहिए।
- व्यक्तिगत भेदों के कारण सब बालकों में समान कार्य की समान मात्रा पूर्ण करने की क्षमता नहीं होती है। अतः गृह–कार्य देते समय बालकों की क्षमताओं और योग्यताओं का पूर्ण ध्यान रखना आवश्यक है।
- वैयक्तिक भिन्नताएँ लिंग–भेद के कारण भी पाई जाती है जिससे बालक–बालिकाओं के रूचियों, क्षमताओं, योग्यताओं, आवश्यकताओं आदि में अन्तर होता है। जैसे–जैसे वह बड़े होते है, वैसे–वैसे अन्तर अधिक स्पष्ट होता है। अतः प्राथमिक कक्षाओं में उनके लिए समान पाठ्य–विषय हो सकते है परन्तु माध्यमिक कक्षाओं में इन विषयों में अन्तर की स्पष्ट रेखा का खींचा जाना आवश्यक है। शिक्षक और माता–पिता को इन अन्तरों को ध्यान में रखकर बालक–बालिकाओं को सिखाना या प्रशिक्षण देना चाहिए।
- इसी प्रकार स्किनर महोदय के अनुसार उद्योग के क्षेत्र में भी कर्मचारियों के चयन में वैयक्तिक भिन्नता का अध्ययन आवश्यक है। इसी प्रकार कर्मचारियों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों एवं स्थानान्तरण के समय में भी वैयक्तिक भिन्नता का ज्ञान आवश्यक है।

अतः सारांश रूप में बालकों की वैयक्तिक भिन्नताओं का शिक्षा में अति महत्वपूर्ण स्थान है। इन विभिन्नताओं का ज्ञान प्राप्त करके शिक्षक अपने छात्रों को विविध प्रकार से लाभ पहुँचा सकता है। बाल मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी बालकों के व्यवहार को समझने में, उनके विकास के लिए उपयुक्त वातावरण प्रदान करने में वैयक्तिक भिन्नताओं का ज्ञान आवश्यक है।

बोध प्रश्न

- शिक्षा के क्षेत्र में वैयक्तिक भेदकताओं का महत्व लिखिए .....
  .....।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. वैयक्तिक भिन्नताओं का अर्थ एवं परिभाषा देते हुए वैयक्तिक भिन्नताओं के प्रभावी कारकों का वर्णन कीजिए।
2. वैयक्तिक भिन्नताओं से क्या अभिप्राय है ? एक शिक्षक के लिए वैयक्तिक भिन्नताओं का ज्ञान किस प्रकार उपयोगी है।

प्रशिक्षुओं हेतु

- एक अध्यापक की भूमिका का निर्वहन करते हुए विद्यार्थियों में वैयक्तिक भिन्नता के प्रभाव की चर्चा कीजिए।

कल्पना, चिन्तन और तर्क का विकास

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- कल्पना का अर्थ
- कल्पना के प्रकार
- कल्पना–विकास के निर्धारक कारक
- कल्पना का विकास

कल्पना– कल्पना गत अनुभवों से सम्बन्धित होती है। इसमें हमेशा नवीनता का तत्व पाया जाता है। बालक को कल्पना में यह यह अनुभव होता है कि कल्पना से सम्बन्धित अनुभव नवीन है। कल्पना को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि कल्पना पूर्व प्रत्यक्षीकृत अनुभवों पर आधारित वह प्रक्रिया है जो रचनात्मक होती है, परन्तु आवश्यक नहीं है कि वह सृजनात्मक भी हो।

बालक जब पुनः स्मरण और कल्पना करना सीख लेता है तब उसका सामाजिक सम्पर्क अधिक बढ़ जाता है। इस योग्यता के प्राप्त होते ही बालक उन वस्तुओं के सम्बन्ध में भी विचार करने लग जाता है जो उसके सामने नहीं होती है। कल्पना का महत्व बालक की विभिन्न विकासात्मक प्रक्रियाओं में है। बालक में अनेक क्रियात्मक कौशलों का विकास उसकी कल्पना पर आधारित होता है।

परिभाषाएँ :–

1. **रायबर्न के अनुसार–** ''कल्पना वह शक्ति है जिसके द्वारा हम अपनी प्रतिभाओं का नये आकार से प्रयोग करते हैं। वह हमको अपने पूर्ण अनुभव को किसी ऐसी वस्तु का निर्माण करने में सहायता देती है, जो पहले कभी नहीं थी।''
2. **मैक्डूगल के शब्दों में** –''कल्पना दूरस्थ वस्तुओं के सम्बन्ध का चिन्तन है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि कल्पना एक मानसिक प्रक्रिया है, यह स्वतः ही चलती रहती है। इसका प्रयोग क्रमबद्धता पर निर्भर करता है। कल्पना का आधार पूर्व अनुभव होता है। इसके बिना कल्पना साकार रूप नहीं ले पाती है। कल्पना का प्रारम्भ और अन्त सृजन के लिये होता है।

बोध प्रश्न–

- कल्पना किसे कहते हैं ? स्पष्ट कीजिए .....
  .....
  .....
  ..... ।

कल्पना के प्रकार

मैक्डूगल ने कल्पना के कुछ प्रमुख प्रकार बतलाये हैं जो निम्नांकित हैं –

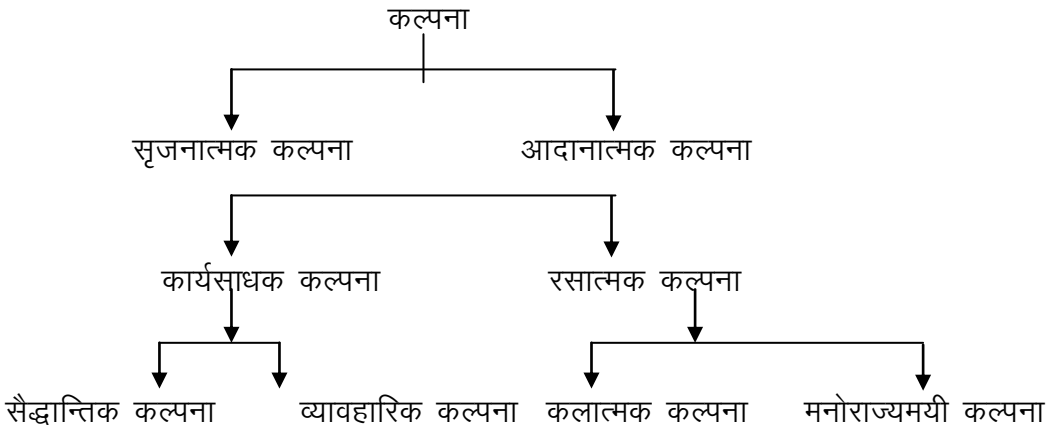

(1) सृजनात्मक कल्पना– इस कल्पना का सृजन से सीधा सम्बन्ध होता है। इसी कल्पना के आधार पर चित्रकार चित्र, कवि कविता, लेखक लेखन करता है।

(2) आदानात्मक कल्पना–बालक जब दूसरे के कथन या कल्पना के आधार पर कल्पना करता है तो यह कल्पना आदानात्मक कल्पना कहलाती है।

(3) कार्यसाधक कल्पना–ज्ञान का विकास इसी कल्पना के आधार पर होता है। इसी प्रकार की कल्पना जटिल समस्याओं के हल में सहायक है। यह कल्पना दो प्रकार की होती है –

सैद्धान्तिक कल्पना–उच्च कोटि के नियम, सिद्धान्त आदि इसी कल्पना के आधार पर प्रतिपादित होते हैं।

व्यावहारिक कल्पना–व्यावहारिक या क्रियात्मक बातों से सम्बन्धित कल्पना व्यावहारिक कल्पना कहलाती है। व्यावहारिक जीवन में उपयोग में आने वाली वस्तुओं से सम्बन्धित कल्पना का बालकों के जीवन में बहुत अधिक महत्व है।

(4) रसात्मक कल्पना–इस प्रकार की कल्पना को सौन्दर्यात्मक कल्पना भी कहते हैं। इसके दो प्रमुख प्रकार हैं–

कलात्मक कल्पना–नाटक, कविता, कहानी, चित्र आदि इसी कल्पना के आधार पर बनाये जाते हैं। एक लेखक अपनी कृति की रचना इसी कलात्मक कल्पना के आधार पर करता है।

मनोराज्यमयी कल्पना–इसी कल्पना के आधार पर एक लेखक अपनी कल्पना में स्वाभाविकता और नियन्त्रण को भूलकर अपनी कल्पना तरंगों में गोते लगाता है।

बोध प्रश्न– *मैक्डूगल के अनुसार कल्पना के कितने प्रकार हैं ? स्पष्ट कीजिए।*

कल्पना विकास के निर्धारक तत्व –बच्चों में कल्पना का विकास निम्नलिखित तरीकों से किया जा सकता है।–

(1) भाषा ज्ञान का विकास करके– भाषा का ज्ञान कल्पना के विकास में एक प्रमुख सहायक कारक है। जैसे–जैसे बच्चों का भाषा का ज्ञान बढ़ता जाता है उसमे कल्पना करने की क्षमता भी बढ़ती जाती है। बच्चा जब किसी कहानी को सुनता है तो अनेक शब्दों को सुनकर उनसें सम्बन्धित चीजों की कल्पना कहानी सुनने के साथ–साथ करता जाता है। जब बच्चे के शब्द ज्ञान में वृद्धि हो जाती है तो वह शब्दों के सहारे अनेक घटनाओं की कल्पना करने लगता है।

सोचें

भाषा–ज्ञान ही कल्पना का आधार होता है कैसे ? .....
.....।

(2) कहानियाँ या कथाएँ–बच्चों के कल्पना विकास में कहानियाँ या कथाएँ सहायक होती है। कहानियों से नए–नए शब्दों का ज्ञान बढ़ता है साथ ही कल्पना का भी विकास होता है। शिक्षक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जब कोई कहानी बच्चों को सुनाई जाए तो पूरे हाव–भाव के साथ तथा कहानी को आधी सुनाकर बच्चों से पूरी करवाएं। बच्चे इस प्रकार अपनी कल्पना के माध्यम से कहानी को पूरी करेंगें।

सोचें और विचार करें कि – क्या आपने भी बचपन में कहानियाँ सुनकर कल्पना की थी ?.....
.....।

(3) अभिनय या कार्यभूमिका– बालकों के कल्पना विकास को अभिनय भी महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है। अभिनय के पात्र से बालक, साहस, वीरता, नैतिकता, हास्य आदि सीखकर पात्रों के समान अपने जीवन को ढालता है, इससे उसका अनुभव और कल्पना शक्ति बढ़ती है। दूसरे अभिनय करके बालक स्वयं अनेक नए अनुभव प्राप्त करता है।

(4) कविताएँ–बालकों के कल्पना विकास को कविताएँ भी प्रभावित करती हैं। जिन कविताओं में कल्पना का पुट जितना ही अधिक होता है वे कविताएँ कल्पना विकास का उतना ही महत्वपूर्ण साधन होती है।

(5) साहित्य, चित्रकारी आदि–बालकों के कल्पना विकास को साहित्य, चित्रकारी, शिल्प और संगीत आदि भी महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते हैं। इन सभी साधनों से बालक प्रारम्भ से ही अपने आप को अभिव्यक्त करना सीखता है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति जितनी ही अधिक होती है उसकी कल्पना शक्ति के विकास की उतनी ही अधिक सम्भावनाएँ होती है।

(6) जनमाध्यम –सिनेमा, रेडियो और टेलीविजन जैसे माध्यम बालकों में कल्पना शक्ति विकसित करने में सहायक होते है। बच्चों के लिए बनाई गई कार्टून फिल्में तो कल्पना विकास में बहुत अधिक सहायक हैं।

बोध प्रश्न–

- कल्पना विकास के निर्धारक तत्वों पर संक्षेप में लिखिए..... ..... ।

कल्पना का विकास (Development of Imagination)

अनेक मनोवैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं कि कल्पना का विकास बालक में उस समय से प्रारम्भ हो जाता है जब से उसमें भाषा का विकास प्रारम्भ होता है। दो वर्ष की अवस्था तक बालकों की कल्पना का विकास बहुत मन्द गति से होता है परन्तु दो वर्ष की अवस्था के बाद कल्पना का विकास तीव्रगति से होता है। पियाजे का विचार है कि बालक में प्रारम्भ में पुनरोत्पादक कल्पना (Reproductive Imagination) पायी जाती है। बालक में कल्पना का विकास वैसे–वैसे बढ़ता जाता है जैसे–जैसे उसमें प्रतिमाओं (Images) का विकास होता जाता है, उसमें इन प्रतिमाओं को संरचित बौद्धिक कार्यों में संगठित करने की योग्यता बढ़ती जाती है।

चार–पाँच वर्ष का बालक अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करता है–जैसे मम्मी बाजार से खिलौने और मिठाई ला रही होगी, लकड़ी के बर्तनों से खाना पकाने का खेल आदि। लगभग पाँच वर्ष की अवस्था से ही बालक में रचनात्मक कल्पना का विकास होने लगता है। वह केवल डण्डे या छड़ी को घोड़ा समझकर उस पर सवारी करता है। उत्तर–बाल्यावस्था से ही बालकों में मनोरंजमयी (Fantastic) कल्पना का विकास तीव्रगति से प्रारम्भ हो जाता है। इस अवस्था के अन्त तक वह भाग्य, मन्त्र और जादू आदि के सम्बन्ध में कल्पना करने लग जाते है। किशोरावस्था तक बालकों की कल्पना का अधिकांश विकास हो चुका होता है। इस अवस्था में बालक–बालिकाएँ बहुधा विपरीत लिंग के लोगों के सम्बन्ध में कल्पना करने लग जाते हैं। अधिकांश बालकों में आयु बढ़ने के साथ–साथ गम्भीरता आती जाती है। वे वास्तविकता से अधिक सम्बन्धित होते हैं। कल्पना का उपयोग तो अधिकांशतः रचनात्मक कार्यों की सृजनात्मकता में करते हैं।

बोध प्रश्न–

- बालकें में कल्पना का विकास कैसे होता है ? समझाइए .... ।

चिन्तन (Thinking)

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- चिन्तन का अर्थ व परिभाषाएँ
- चिन्तन के उपकरण या साधन
- चिन्तन के प्रकार
- चिन्तन वृद्धि के तरीके या विधियाँ

चिन्तन एक उच्च ज्ञानात्मक (cognitive) प्रक्रिया है, जिसके द्वारा ज्ञान संगठित होता है। इस मानसिक प्रक्रिया में स्मृति, कल्पना आदि मानसिक प्रक्रियाएँ सम्मिलित होती हैं। मानवीय जीवन समस्याओं से भरा हुआ है। हम एक समस्या का हल खोज नहीं पाते, कि दूसरी सामने उपस्थित हो जाती है। ये समस्याएँ प्रयत्न करने से हल हो जाती हैं और कभी कभी प्रयत्न ही चिन्तन को जन्म देता है।

चिन्तन का अर्थ एवं परिभाषाएँ –दर्शनशास्त्र ने यह सिद्ध कर दिया है कि विश्व की प्रगति मानव की चिन्तन शक्ति पर निर्भर रहती है। चिन्तन के द्वारा वास्तविकता का पता लगाया जाता है और वास्तविकता विज्ञान को जन्म देती है। अतः चिन्तन शब्द का प्रयोग याद, कल्पना और अनुमान आदि रूपों में प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक प्रकार के चिन्तन की कोई न कोई दिशा अथवा लक्ष्य अवश्य होता है। चिन्तन में बालक क्रियाशील रहता है। चिन्तन वस्तुओं, प्रतिमाओं और प्रतीकों आदि किसी के भी सम्बन्ध में हो सकता है। चिन्तन के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने में निम्न मत सहायक है–

(1) वैलेन्टाइन के अनुसार– ''मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से 'चिन्तन' शब्द का प्रयोग उस क्रिया के लिये किया जाता है जिसमें श्रृंखलाबद्ध विचार किसी लक्ष्य या उद्देश्य की ओर अविराम गति से प्रवाहित होते है।''

(2) गैरेट के अनुसार–''चिन्तन एक प्रकार का अव्यक्त एवं रहस्यपूर्ण व्यवहार होता है, जिसमें सामान्य रूप से प्रतीकों (बिम्बों, विचारों, प्रत्ययों) का प्रयोग होता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि चिन्तन एक ज्ञानात्मक क्रिया है। यह स्वतः ही नहीं होती बल्कि प्रयत्न करना पड़ता है। चिन्तन की क्रिया उद्देश्यपूर्णता की ओर अग्रसर रहती है। इसमें दिवास्वप्न या कल्पना आदि का कोई भी स्थान नहीं है। चिन्तन के द्वारा समस्या–समाधान होता है। यह मुख्य रूप से प्रतीकों पर आधारित मानसिक क्रिया है।

- चिन्तन प्रक्रिया में निम्नलिखित में से सर्वाधिक कौन सा तत्व होता है–
- (i) उद्देश्य–पूर्णता (ii) उत्पादकता (iii) सृजनात्मकता (vi) इन में से कोई नहीं।
- चिन्तन की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए..... ।

चिन्तन के उपकरण या साधन –विभिन्न विद्वानों ने अपने अध्ययनों के आधार पर चिन्तन प्रक्रिया के आधार स्तम्भ या उपकरण को निम्नलिखित भागों में प्रस्तुत किया है–

(1) प्रतिमाएँ (Images) – मानव अनुभव प्रतिमाओं के आधार पर व्यक्त होता है। हम जो कुछ देखते हैं, करते हैं एवं सुनते हैं, सभी का आधार मन में विकसित प्रतिमा होती है। इसीलिए इनको स्मृति प्रतिमा, दृश्य प्रतिमा, कल्पना प्रतिमा आदि नाम देते हैं। ये प्रतिमाएँ वस्तु, व्यक्ति एवं विचार से निर्मित होती हैं। चिन्तन में इन्हीं को आधार बनाया जाता है।

(2) प्रत्यय (concept) – चिन्तन का महत्वपूर्ण साधन प्रत्यय भी माना जाता है। इसके द्वारा हमें 'सम्पूर्ण ज्ञान' का बोध होता है; जैसे –हाथी शब्द को सुनकर हमारे मस्तिष्क में हाथी से सम्बन्धित संचित प्रत्यय जाग जाता है और सम्पूर्ण ज्ञान का अभ्यास होने लगता है।

(3) प्रतीक एवं चिन्ह (symbols and signs)–प्रतीक एवं चिन्ह मूक रहते हुए भी अपना अर्थ स्पष्ट या व्यक्त करने में समर्थ होते हैं। सड़क पर बने हुए प्रतीक या चिन्ह हमें सही गति एवं सुरक्षा को स्पष्ट करते हैं। इसी प्रकार गणित में + या x का चिन्ह अर्थ स्पष्ट करता है कि हमें क्या करना है?

(4) भाषा (Language) –विद्वानों ने भाषा के पीछे चिन्तन शक्ति को बतलाया है। सामाजिक विकास में भाषा संकेतों एवं इशारों से भी प्रकट होती है जैसे–मुस्कराना, भौंहें चढ़ाना तथा अँगूठा दिखाना आदि। इन सबका दैनिक जीवन में प्रयोग किया जाता है तथा बिना बोले अर्थ को लगाना या समझना प्रचलित है। इन सबके पीछे चिन्तन शक्ति है, जो अर्थों को स्पष्ट करती है।

(5) सूत्र (Formula) हमारी प्राचीन परम्परा है कि हम ज्ञान को छोटे–छोटे सूत्रों में एकत्रित करके संचित करते हैं। इसमें गणित, विज्ञान आदि के सूत्र आते हैं। भारतीय ज्ञान संस्कृत के श्लोकों में संचित है जिसकी व्याख्या से अपार ज्ञान प्रकट होता है। सूत्र को देखकर हमारी चिन्तन शक्ति उसमें निहित सम्पूर्ण ज्ञान को प्रकट करती है।

- चिन्तन विकास के साधन कौन–कौन से हैं ? बताइए।

.....

चिन्तन के प्रकार (Kinds of Thinking) –चिन्तन को चार रूपों में विभाजित किया जाता है जो निम्नलिखित प्रकार से हैं–

(1) प्रत्यक्षात्मक चिन्तन (Perceptual Thinking) यह वह चिन्तन है जो वस्तुओं और परिस्थितियों के प्रत्यक्षीकरण से सम्बन्धित होता है। बालक अपने चारों ओर के भौतिक और मनोवैज्ञानिक वातावरण

में जिन वस्तुओं और परिस्थितियों को देखता है या प्रत्यक्षीकरण करता है उनके सम्बन्ध में जो चिन्तन होता है वह प्रत्यक्षात्मक चिन्तन कहलाता है।

(2) कल्पनात्मक चिन्तन (Imaginative Thinking) जब उद्दीपक, वस्तु या पदार्थ, उपस्थित नहीं होता है तब उसकी कल्पना की जाती है। इनके अभाव में इनकी मानसिक प्रतिमा बनाकर इन प्रतिमाओं से सम्बन्धित चिन्तन कल्पनात्मक चिन्तन कहलाता है।

(3) प्रत्ययात्मक चिन्तन (Conceptual Thinking)- यह अपेक्षाकृत अधिक उच्च प्रकार का चिन्तन है। इसकी बालकों मे ंतभी अभिव्यक्ति होती है जब बालकों में प्रत्ययों का निर्माण प्रारम्भ होता है। एक बालक में जितने ही अधिक प्रत्यय निर्मित होते हैं उसमें उतना ही अधिक प्रत्ययात्मक चिन्तन पाया जाता है। इस प्रकार के चिन्तन को विचारात्मक चिन्तन (Ideational Thinking) भी कहते हैं। स्थान, आकार, भार, समय, दूरी और संख्या आदि सम्बन्धी प्रत्यय बालकों में प्रारम्भिक आयु स्तर पर ही बन जाते हैं। इन प्रत्ययों के सम्बन्ध चिन्तन भी प्रत्ययात्मक चिन्तन कहलाता है।

(4) तार्किक चिन्तन (LogicalThinking)–यह अपेक्षाकृत सर्वाधिक उच्च प्रकार का चिन्तन है। इसका सम्बन्ध किसी समस्या के समाधान से होता है।

विचार करें कि –

- चिन्तन के विभिन्न प्रकार 'समस्या समाधान' में कैसे सहायक हैं ?

चिन्तन वृद्धि के तरीके या विधियाँ (Methods of Promoting thinking)- शिक्षा में चिन्तन की उपादेयता बालकों में चिन्तन प्रवृत्ति के विकास से प्रतीत होती है। प्रारम्भिक दिनों में वस्तु के प्रत्यक्षीकरण और रटने के द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है। जैसे–जैसे बालक बड़ा हेाता है, वैसे ही उसमें वस्तु, व्यक्ति एवं भाव के बीच सम्बन्ध स्थापना विकसित होनी लगती है। इससे उसका ज्ञान पूर्ण होता है। अतः अध्यापक को छात्रों में सावधानीपूर्वक चिन्तन वृद्धि के उपायों का विकास करना चाहिए। चिन्तन वृद्धि की विधियाँ निम्नवत् है–

(1) ज्ञान की गहनता (Deep Knowledge)- चिन्तन के विकास के लिये बालकों में ज्ञान के प्रति रुचि एवं लगन उत्पन्न करनी चाहिए। चिन्तन की सहायक सामग्री से विभिन्न प्रकार का ज्ञान होता है, जो चिन्तन प्रक्रिया को मजबूत एवं सफल बनाता है।

(2) भाषा की परिपक्वता (Maturity of Language) भाषा ही विचार अभिव्यक्ति का माध्यम है। बालक के चिन्तन के विकास में भाषा का अत्यधिक महत्व है। अतः शिक्षक को अपने बालकों को सही भाषा का उच्चारण, लिखना एवं वाचन करना सिखाना चाहिए। जब वे भाषा में परिपक्व हो जायेंगे तो चिन्तन प्रक्रिया में सरलता होगी।

(3) सशक्त प्रेरणा (Motivation) – प्रेरणा मानव विकास में सहायक होती है। थॉर्नडाइक महोदय ने प्रेरणा को सीखने और चिन्तन में सहायक माना है। प्रेरणा आन्तरिक होनी चाहिए ताकि बालकों का पूर्ण ध्यान एवं रुचि चिन्तन के प्रति लग सकें। इसीलिए सशक्त प्रेरणा को चिन्तन प्रणाली का प्रभावशाली तत्व माना जाता है।

(4) बौद्धिक प्रखरता (Intesity in Intelligence) –बालकों में बौद्धिक वितरण जिस औसत से होगा, चिन्तन प्रबलता भी उसी औसत से पायी जाती है। बुद्धि का विकास नहीं होता है बल्कि उसमें तीव्रता पैदा की जाती है। यही तीव्रता चिन्तन शक्ति में सकारात्मक भूमिका अदा करती है। अतः ज्ञान के द्वारा बालकों की बौद्धिक प्रखरता को तीव्र बनाना चाहिए।

(5) लगन एवं रुचि (Attention and Interest) बालक में चिन्तन शक्ति रुचि पर निर्भर होती है। जब वह किसी उद्दीपक पर ध्यान देगा एवं रुचि प्रदर्षित करेगा तो चिन्तन प्रक्रिया का प्रारम्भ स्वतः ही हो जाता है। इसलिए बालकों में कार्य के प्रति जागरूकता एवं रुचि को जागृत करना चाहिए।

(6) समस्या समाधान में स्वतन्त्रता (Free in Problem Solving) चिन्तन शक्ति का विकास करने के लिए बालकों को स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिए। स्वतन्त्रतापूर्वक क्रिया–प्रतिक्रिया करने से बालक समस्या के प्रति अभियोजन करना सीखते हैं। उनके अन्दर रहन–सहन की विभिन्न विधियाँ विकसित करने की शक्ति उत्पन्न होती है। इस तरह प्रयत्न एवं भूल के माध्यम से समाधान की नवीन प्रक्रियाएँ जन्म लेती हैं।

(7) तर्क में परिपक्वता (Adequacy of Reasoning Process) जब हम सारगर्भित विचारों से युक्त चिन्तन का प्रयोग करते हैं तो इसे तर्क कहते हैं और जब अशुद्ध चिन्तन प्रस्तुत करते हैं तो कुतर्क कहलाता है। बालकों में सारयुक्त चिन्तन का विकास तर्क के द्वारा ही सम्भव है। तर्क सही एवं गलत में अन्तर स्पष्ट करता है, जो सही चिन्तन को जन्म देता है।

(8) समस्या प्रस्तुत करना (Problem Presentation) बालकों की चिन्तन शक्ति का विकास करने के लिये समस्याएँ उत्पन्न करनी चाहिए। ये समस्याएँ बालको के समक्ष इस प्रकार से रखी जायें जैसे वातावरण से स्वतः उत्पन्न हुई हैं। बालक स्वतः ही क्रियाशील होकर चिन्तन करके समस्या का हल खोजेंगे। इसीलिये रूसो ने अध्यापक को पर्दे के पीछे रहने को कहा था। अध्यापक छात्रों को मार्ग–दर्शन देता है और उसी आधार पर वे अपना विकास करते हैं। इस प्रकार से बालक जीवन के प्रति आशावान हो जाते हैं और समस्याओं के प्रति सावधान।

बोध प्रश्नः–

- एक अध्यापक होने के नाते आप बालकों में चिन्तन का दृष्टिकोण विकसित करने हेतु क्या उपाय करेंगे। स्पष्ट कीजिए।

तर्क का अर्थ (Meaning of Reasoning)

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- तर्क का अर्थ एवं परिभाषाएँ
- तर्क के प्रकार
- तर्क विकास की विधियाँ

तर्क एक अव्यक्त क्रिया है, जिसका प्रकटीकरण समस्या–समाधान व्यवहार से होता है। सामान्य जीवन में तर्क–शक्ति का प्रयोग स्वाभाविक रूप से होता है। हमें किसी भी अतिरिक्त शक्ति का प्रयोग नहीं करना पड़ता। इसीलिए इसे उच्च मानसिक क्रिया कहा जाता है। साक्षात्कार या परीक्षा के समय तर्क द्वारा दिये गये उत्तर अधिक स्पष्ट एवं बौद्धिक क्षमता के परिचायक होते है। अतः तर्क वह प्रक्रिया है, जो उपस्थित समस्या के लिये उपयुक्त हल प्रस्तुत करते हैं, ताकि समस्या का हल शीघ्र प्राप्त हो जाये।

परिभाषाएँ–

(1) गैरेट के अनुसार– ''मन में किसी उद्देश्य एवं लक्ष्य को रखकर क्रमानुसार चिन्तन करना तर्क है।''

(2) वुडवर्थ के शब्दों में– ''तर्क में (तथ्यों एवं सिद्धान्तों) जो स्मृति या वर्तमान निरीक्षण द्वारा प्राप्त होते हैं– को परस्पर मिलाया जाता है, फिर उस मिश्रण का परीक्षण में से निष्कर्ष निकाला जाता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि तर्क शक्ति का प्रारम्भ लक्ष्य प्राप्ति के लिये होता है। इसका प्रारम्भ प्रतिक्रिया की शिथिलता से भी होता है। तर्क में पूर्व ज्ञान, पूर्व अनुभव तथा पूर्व अनुभूतियों का विश्लेषण किया जाता है। इससे समस्या–समाधान की नवीन विधियों का जन्म होता है। तर्क में किसी घटना के कारण को खोजा जाता है। इसमें सीखने की विभिन्न विधियों ''प्रयत्न एवं भूल'', सूझ द्वारा, अनुकरण द्वारा, साहचर्य द्वारा आदि का सहारा लिया जाता है। ये विधियाँ क्रमवार प्रयोग की जाती है। अतः जब तक समस्याएं हैं, तर्क का प्रयोग होता रहेगा।

बोध प्रश्न–

- तर्क की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए ?

.....

तर्क का प्रकार (Kinds of Reasoning)

तर्क को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, जिसका वर्णन निम्नलिखित है–

(1) आगमन तर्क (2) निगमन तर्क

(1) आगमन तर्क (Inductive Reasoning) इस तर्क में व्यक्ति अपने अनुभवों या अपने द्वारा संकलित तथ्यों के आधार पर किसी सामान्य नियम या सिद्धान्त का निरूपण करता है। इसमें वह तीन स्तरों से होकर गुजरता है–निरीक्षण, परीक्षण और सामान्यीकरण। जैसे –जब माँ घर लौटने पर बच्चे को रोता हुआ पाती है, तब वह उसके रोने के कारणों की खोज करके इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि वह भूख के कारण रो रहा है। इस प्रकार इस विधि में हम विशिष्ट सत्य से सामान्य सत्य की ओर अग्रसर होते है।

(2) निगमन तर्क (Deductive Reasoning) इस तर्क में व्यक्ति दूसरों के अनुभवों, विश्वासों या सिद्धान्तों का प्रयोग करके सत्य का परीक्षण करता है। जैसे, मॉ को इस सिद्धान्त में विश्वास है, तो वह बच्चे को रोता देखकर तुरन्त इस निष्कर्ष पर पहुँच जाती है कि उसे भूख लगी है और इसलिए उसे दूध पिला देती है। इस प्रकार इस विधि मे हम एक सामान्य सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं और उसे नवीन परिस्थितियों में प्रयोग करके सिद्ध करते हैं।

वास्तव में ये दोनों तर्क एक–दूसरे के विरोधी जान पड़ते है पर वास्तव में ऐसा नहीं है। ये तर्क कही जाने वाली एक ही क्रिया के अन्तर्गत दो प्रतिक्रियों है।

बोध प्रश्न–

- निगमन तर्क की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

.....

तर्क विकास की विधियाँ (Methods of Reasoning Development)

तर्क प्रक्रिया का प्रयोग वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के लिये शिक्षा में किया जाता है। इससे जो निष्कर्ष ज्ञात होते हैं वे जन–सामान्य के लिये लाभदायक सिद्ध होते हैं। अतः बालकों में तर्कशक्ति के विकास के लिए निम्नलिखित विधियाँ हैं –

(1) दृढ़ निश्चय (Firm Determination) शिक्षक को बालकों में आत्म–विश्वास की भावना की वृद्धि करनी चाहिए जिससे वे जीवन के लक्ष्यों को पूरा करने का दृढ़ निश्चय कर सकें। दृढ़ निश्चय से लगन, बुद्धि, उत्साह, क्रियाशीलता एवं आत्म–विश्वास विकसित होता है, जो तर्कशक्ति का आधार है।

(2) स्वाभाविकता का विकास (Development of Naturality) बालकों को तर्क की प्रेरणा आपसी बातचीत से मिलती है। परिवार के सदस्यगण जब आपस में विचार–विमर्श करते हैं तो बालक भी अपनी राय देते हैं। हमें उनकी राय को नकारना नहीं चाहिए बल्कि उनकी स्वाभाविकता की प्रशंसा करनी चाहिए। इस प्रकार से विभिन्न रायों मे से एक राय समस्या का समाधान करती है, जो

बालकों के मस्तिष्क की उपज होती है। इसीलिए विद्वानों ने तर्क प्रक्रिया को बढ़ावा देने के लिये 'आगमन विधि' को अधिक उपयुक्त माना है।

सोचें–

- क्या स्वाभाविकता द्वारा तर्क का विकास सम्भव है ? .....
  .....

(4) क्रमागत ज्ञान (Systematic Knowledge) बालकों को सदैव व्यवस्थित या क्रमबद्ध तरीके से चरणों में ज्ञान देना चाहिए, ताकि वे सभी चरणों को भलीभाँति समझ सकें। साथ ही उनके समक्ष समस्या प्रस्तुत करना चाहिए और चरणों का व्यावहारिक प्रयोग करना सिखाना चाहिए। इस तरह बच्चे तर्क की ओर प्रेरित होगें।

(5) सूझ–शक्ति का प्रयोग (Use of Insight) तर्क, सूझ की शक्ति और पूर्वानुभवों पर निर्भर करती है। हमें सूझ एवं पूर्व अनुभवों का सही प्रयोग करना बच्चों को सिखाना चाहिए। जब बच्चे किसी समस्या का समधान पूर्व ज्ञान के द्वारा नहीं कर पाते हैं, तो वे सूझशक्ति का प्रयोग करेंगे। इस प्रकार स्वयं के मानसिक चिन्तन द्वारा समस्या–समाधान किया जा सकता है, जो सूझ का परिणाम होता है।

विचार करें

- क्या सूझ शक्ति, तर्क को बढ़ावा देती है ?
  .....
  .....।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र01 कल्पना के प्रकारों को समझाइए ? एक शिक्षक के रूप में आप छात्रों में कल्पना विकास कैसे करेंगे।

प्र02– चिन्तन विकास के उपकरण या साधनों पर प्रकाश डालिए।

प्र03– तर्क कितने प्रकार का होता है ? तर्क विकास के विभिन्न उपाय कौन–कौन से है ?

बाल विकास के आधार एवं उनको प्रभावित करने वाले कारक

बाल–विकास की प्रकृति (Nature of child Development)

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- बाल विकास की प्रकति
- वंशानुक्रम का अर्थ व परिभाषा
- वंशानुक्रम की प्रक्रिया
- वंशानुक्रम के सिद्धान्त और नियम
- बाल–विकास पर वंशानुक्रम का प्रभाव

प्राणी के गर्भ में आने से लेकर पूर्ण प्रौढ़ता प्राप्त होने की स्थिति मानव विकास है। मानव का विकास अनेक कारकों द्वारा होता है। इन कारकों ने दो प्रमुख हैं– जैविक एवं सामाजिक। जैविक विकास का दायित्व माता–पिता पर होता है और सामाजिक विकास का वातावरण पर। बालक लगभग 9 माह अर्थात 280 दिन तक माँ के गर्भ में रहता है और तबसे ही उसके विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। जब भ्रूण विकसित होकर पूर्ण बालक का स्वरूप ग्रहण कर लेता है तो प्राकृतिक नियमानुसार उसे गर्भ से पृथ्वी पर आना ही पड़ता है। तब बालक के विकास की प्रक्रिया प्रत्यक्ष रूप से विकसित होने लगती है। बालक के विकास पर वंशानुक्रम के अतिरिक्त वातावरण का भी प्रभाव पड़ने लगता है। जन्म से सम्बन्धित विकास को वंशानुक्रम तथा समाज से सम्बन्धित विकास को वातावरण कहते हैं। इसे प्रकृति (Nature) तथा पोषण (Nurture) भी कहा जाता है। वुडवर्थ का कथन है कि एक पौधे का वंशक्रम उसके बीच में निहित है और उसके पोषण का दायित्व उसके वातावरण पर है।

बोध प्रश्न–

- बाल–विकास की प्रकृति की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए ।

.....

वंशानुक्रम का अर्थ व परिभाषाएँ (Meaning and Definition of Heredity)

साधारणतया जैसे माता–पिता होते हैं, वैसे ही उनकी सन्तान होती है। उसे अपने माता–पिता के शारीरिक और मानसिक गुण प्राप्त होते है। बालक को न केवल अपने माता–पिता से वरन् उनसे पहले के पूर्वजों से भी अनेक शारीरिक और मानसिक गुण प्राप्त होते है। इसी को हम वंशानुक्रम, वंश–परम्परा, पैतृकता, आनुवांशिकता आदि नामों से पुकारते तैं। बालक में उत्पन्न विशेषताओं के लिये उसके माता–पिता को ही उत्तरदायी नहीं ठहराया जाता है बल्कि उसके सगे सम्बन्धियों को भी।

(1) **रूथ बैनेडिक्ट के अनुसार**– ''वंशानुक्रम माता–पिता से सन्तान को प्राप्त होने वाले गुणों का नाम है।''

(2) **बुडवर्थ के शब्दों में**– ''वंशानुक्रम में वे सभी बातें आ जाती हैं, जो जीवन का आरम्भ करते समय, जन्म के समय नहीं वरन् गर्भाधान के समय, जन्म से लगभग नौ माह पूर्व, व्यक्ति में उपस्थित थीं।''

(3) **जेम्स ड्रेवर के अनुसार**– ''माता–पिता की विशेषताओं का सन्तानों में हस्तान्तरण होना वंशानुक्रम है।''

(4) **जे0ए0 थाम्पसन के शब्दों में**– ''वंशानुक्रम, क्रमबद्ध पीढ़ियों के बीच उत्पत्ति सम्बन्धी, सम्बन्ध के लिये सुविधाजनक शब्द है।''

उपर्युक्त विद्वानों के मतों से स्पष्ट होता है कि वंशानुक्रम की धारण अर्मूत होती है। इसको हम व्यक्ति के व्यवहारों एवं विशेषताओं के द्वारा ही जान सकते हैं। अतः मानव व्यवहार का वह संगठित रूप, जो छात्र में उसके माता–पिता और पूर्वजों द्वारा हस्तान्तरित होता है, को हम वंशानुक्रम कहते हैं।

बोध प्रश्न

- वंशानुक्रम का अर्थ स्पष्ट करते हुए कोई एक परिभाषा दीजिए ?

.....

वंशानुक्रम की प्रक्रिया (Process of Heredity)– मानव शरीर कोषों (cells) का योग होता है। शरीर का आरम्भ केवल एक कोष से होता है, जिसे संयुक्त कोष (zygote) कहते हैं। यह कोष 2,4,8,16,32 और इसी क्रम में संख्या में आगे बढ़ता है। संयुक्त कोष दो उत्पादक कोषों का योग होता है। इनमें से एक कोष पिता का होता है, जिसे 'पितृकोष' (sperm) और दूसरा माता का होता है, जिसे 'मातृकोष' (ovum) कहते हैं। 'उत्पादक कोष' भी 'संयुक्त कोष' के समान संख्या में बढ़ते हैं।

पुरूष और स्त्री के प्रत्येक कोष में 23–23 गुणसूत्र (chromosomes) होते हैं। इस प्रकार संयुक्त कोष में 'गुणसूत्रों' के 23 जोड़े होते हैं। गुणसूत्रों के सम्बन्ध में मन ने लिखा है– ''हमारी सब असंख्य परम्परागत विशेषताएँ इन 46 गुणसूत्रों में निहित रहती हैं। ये विशेषताएँ गुणसूत्रों में विद्यमान पित्र्यैकों (Genes) में होती है।'' अतः हमें संयुक्त कोष गुणसूत्र तथा पित्रैक के बारे में जानना आवश्यक है–

(1) संयुक्त कोष (Zygote)–ये गाढ़े एवं तरल पदार्थ साइटोप्लाज्म का बना होता है। साइटोप्लाज्म के अन्दर एक नाभिक (न्यूक्लियस) होता है, जिसके भीतर गुणसूत्र (क्रोमोसोम्स) होते हैं।

(2) गुणसूत्र (chromosomes) प्रत्येक कोशिकाओं के नाभिक में डोरों के समान रचना पायी जाती है, जिनको क्रोमोसोम्स कहा जाता है। ये गुणसूत्र सदैव जोड़ों में पाये जाते हैं। एक संयुक्त कोष में

गुणसूत्रों के 23 जोड़े होते हैं। जिसमें आधे पिता द्वारा प्राप्त होते हैं और आधे माता द्वारा। प्रत्येक गुणसूत्र में छोटे–छोटे तत्त्व होते हैं, जिनको 'जीन्स' कहते हैं।

- *वंशानुक्रम की प्रक्रिया में गुणसूत्र का महत्व बताइए।*

(3) पित्रैक (Gene) एक गुणसूत्र के अन्दर वंशानुक्रम के अनेक निश्चयात्मक तत्व पाये जाते हैं, जिनको पित्रैक (जीन) कहा जाता है। जैसा कि एनास्टासी ने लिखा है–''पित्रैक वंशानुक्रम की विशेषताओं का वाहक है, जो किसी न किसी रूप में सदैव हस्तान्तरित होता है।''

अतः अपने माता–पिता और पूर्वजों से जन्मजात विशेषताओं के रूप में हमें जो भी प्राप्त होता है, वह माता–पिता द्वारा प्रदान किये गये पित्रैकों के माध्यम से मॉ के गर्भ में जीवन प्रारम्भ होने (शुक्र कीट द्वारा अण्डकोष का निषेचन होने) के समय ही प्राप्त हो जाता है। यह स्वतः ही पीढ़ी में हस्तान्तरित होते रहते हैं।

- वंशानुक्रम की प्रक्रिया पर चर्चा कीजिए कि वह बालक के विकास में कैसे सहायक है ?

.....

वंशानुक्रम के सिद्धान्त और नियम (Laws and Theories of Heredity)

वंशानुक्रम मनोवैज्ञानिकों तथा जीव वैज्ञानिकों के लिये अत्यन्त रोचक व रहस्यमय विषय है। वंशानुक्रम की प्रक्रिया के सम्बन्ध में विभिन्न परीक्षण एवं प्रयोग किये गये हैं। वंशानुक्रम के स्वरूप को इन्हीं परीक्षणों के आधार पर परिभाषित कर सकते हैं। अतः विभिन्न विद्वानों द्वारा की गयी खोजों को हम सिद्धान्त एवं नियम मानते हैं। इनका वर्णन निम्नलिखित है–

(1) बीजकोष की निरन्तरता का नियम (Law of continuity of Germ Plasm)– इस नियम के अनुसार बालक को जन्म देने वाला बीजकोष कभी नष्ट नहीं होता। इस नियम के प्रतिपादक बीजमैन का कथन है– ''बीजकोष का कार्य केवल उत्पादक कोषों (Germ Cells) का निर्माण करना है, जो बीजकोष बालक को अपने माता–पिता से मिलता है, उसे वह अगली पीढ़ी को हस्तान्तरित कर देता है। इस प्रकार बीजकोष पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है।'' परन्तु इसकी आलोचना करते हुए बी0एन0झा0 ने लिखा है –''इस सिद्धान्त के अनुसार माता–पिता, बालक के जन्मदाता न होकर केवल बीजकोष के संरक्षक हैं, जिसे वह अपनी सन्तान को देते हैं। बीजकोष एक पीढ़ी से दूसरी पीढी को इस प्रकार हस्तान्तरित किया जाता है, मानो एक बैंक से निकलकर दूसरे में रख दिया जाता हो। यह मत वंशक्रम की सम्पूर्ण प्रक्रिया की व्याख्या न कर पाने के कारण अमान्य है।

(2) समानता का नियम (Law of Resemblance) इस नियम के अनुसार जैसे माता–पिता होते हैं, वैसी ही उनकी सन्तान होती है। इस नियम को स्पष्ट करते हुए सोरेनसन ने लिखा है– ''बुद्धिमान माता–पिता के बच्चे बुद्धिमान, साधारण माता–पिता के बच्चे साधारण और मन्दबुद्धि माता–पिता के बच्चे मन्दबुद्धि होते हैं। इसी प्रकार शारीरिक रचना की दृष्टि से भी माता–पिता के समान होते हैं।'' यह नियम भी अपूर्ण है क्योंकि प्रायः देखा जाता है कि काले माता–पिता की संतान गोरी या मंदबुद्धि माता–पिता की संतान बुद्धिमान होती है।

(3) विभिन्नता का नियम (Law of Variation) इस नियम के अनुसार बालक अपने माता–पिता के बिल्कुल समान न होकर कुछ भिन्न होते हैं। इसी प्रकार एक ही माता–पिता के बालक एक–दूसरे के समान होते हुए भी बुद्धि, रंग और स्वभाव में एक–दूसरे से भिन्न होते हैं।

भिन्नता का नियम प्रतिपादित करने वालों में डार्विन तथा लैमार्क ने अनेक प्रयोगों और विचारों द्वारा यह मत प्रकट किया है कि उपयोग न करने वाले अवयव तथा विशेषताओं का लोप आगामी पीढ़ियों में हो जाता है। नवोत्पत्ति तथा प्राकृतिक चयन द्वारा वंशक्रमीय विशेषताओं का उन्नयन होता है।

विचार करें–

- *वंशानुक्रम के निर्धारण में 'विभिन्नता के नियम की प्रभाविता'।*

(4) प्रत्यागमन का नियम (Law of Regression) इस नियम के अनुसार बालक में अपने माता–पिता के विपरीत गुंण पाये जाते हैं। 'प्रत्यागमन' शब्द का अर्थ विपरीत होता है। जब बालक माता–पिता से विपरीत विशेषताओं वाले विकसित होते हैं,तो यहाँ पर प्रत्यागमन का सिद्धान्त लागू होता है। जैसे –मन्दबुद्धि माता–पिता की सन्तान का प्रखर बुद्धि होना। इस नियम के सन्दर्भ में विद्वानों ने निम्न धारणाएँ प्रस्तुत की हैं–

- यदि वंश सूत्रों का मिश्रण सही रूप से नहीं हो पाता है तो विपरीत विशेषताओं वाले बालक विकसित होते है।
- जागृत और सुषुप्त दो प्रकार के गुण वंश को निश्चित करते हैं। विपरीत विशेषताएँ सुषुप्त गुणों का परिणाम होती है।

(5) अर्जित गुणों के संक्रमण का नियम (Inheritance of Acquired Traits) इस नियम के अनुसार माता–पिता द्वारा अपने जीवन–काल में अर्जित किये जाने वाले गुण उनकी सन्तान को प्राप्त नहीं होते हैं। इस नियम को अस्वीकार करते हुए विकासवादी लेमार्क ने लिखा है– ''व्यक्तियों द्वारा अपने

जीवन में जो अर्जित किया जाता है, वह उनके द्वारा उत्पन्न किये जाने वाले व्यक्तियों को संक्रमित करता है।'' लैमार्क ने जिराफ की गर्दन का लम्बा होना परिस्थितिवश बताया, लेकिन अब वह वंशानुक्रमीय हो चुका है। लैमार्क के इस कथन की पुष्टि मैक्डूगल और पवलव ने चूहों पर एवं हैरीसन ने पतंगों पर परीक्षण करके की है। आज के युग में विकासवाद या अर्जित गुणों के संक्रमण का सिद्धान्त स्वीकार नहीं किया जाता है। इस सम्बन्ध में वुडवर्थ ने लिखा है– ''वंशानुक्रम की प्रक्रिया के अपने आधुनिक ज्ञान से संपन्न होने पर यह बात प्रायः असंभव जान पड़ती है कि अर्जित गुणों को संक्रमित किया जा सकें। जैसे यदि आप कोई भाषा बोलना सीख लें, तो क्या आप पित्रैकों द्वारा इस ज्ञान को अपने बच्चे को संक्रमित कर सकते हैं ? इस प्रकार के किसी प्रमाण की पुष्टि नहीं हुई है।

(6) मेण्डल का नियम– इस नियम के अनुसार, वर्णसंकर प्राणी या वस्तुएं अपने मौलिक या सामान्य रूप की ओर अग्रसर होती हैं। इस नियम को चेकोस्लावाकिया के मेण्डल नामक पादरी ने प्रतिपादित किया था। उसने अपने बगीचे में बड़ी और छोटी मटरें बराबर संख्या में मिलाकर बोयी। उगने वाली मटरों में सब वर्णसंकर जाति की थी। मेण्डल ने इस वर्णसंकर मटरों को फिर बोया और इस प्रकार उसने उगने वाली मटरों को कई बार बोया। अन्त में उसे ऐसी मटरें मिलीं, जो वर्णसंकर होने के बजाय शुद्ध थी। जैसा कि निम्नलिखित रेखाचित्र से स्पष्ट है –

मेण्डल का मटरों पर प्रयोग

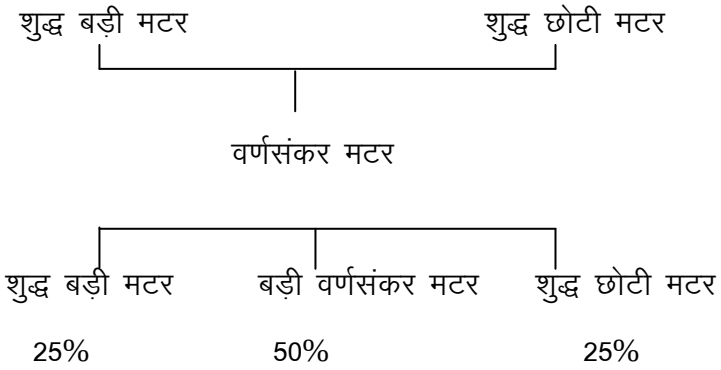

इस प्रकार से 'मेण्डल ने चूहों पर भी प्रयोग किये और पूर्व निष्कर्षों को प्राप्त किया। आपने सफेद और काले चूहों को एक साथ रखा। इनके समागम से पहले काले चूहे उत्पन्न हुए। फिर वर्णसंकर चूहों को एक साथ रखा गया, इनसे सफेद एवं काले दोनों ही प्रकार के चूहे उत्पन्न हुए। मेण्डल के प्रयोगों से निम्न निष्कर्ष प्राप्त होते हैं–

- मेण्डल का नियम प्रत्यागमन को स्पष्ट करता है।
- बालक में माता–पिता की ओर से एक–एक गुणसूत्र आता है।

- गुणसूत्र की अभिव्यक्ति संयोग पर निर्भर करती है।
- एक ही प्रकार के गुणसूत्र अपने ही प्रकार की अभिव्यक्ति करते हैं।
- जागृत गुणसूत्र अभिव्यक्ति करता है, सुषुप्त नहीं ।
- कालान्तर में यह अनुपात 1:2, 2:4, 1:2, 1:2 होता जाता है।

बोध प्रश्न–

- वंशानुक्रम के सन्दर्भ में मेण्डल के नियम को स्पष्ट कीजिए।

.....

बाल विकास पर वंशानुक्रम का प्रभाव (Influence of Heredity on child Development)

बच्चे के व्यक्तित्व के प्रत्येक पहलू पर वंशानुक्रम का प्रभाव पड़ता है। मनोवैज्ञानिकों ने वंशानुक्रम के प्रभाव को रोकने के लिए विभिन्न प्रयोग किये और यह सिद्ध किया कि बालक का विकास वंशानुक्रम से प्रभावित होता है। वंशानुक्रम निम्नलिखित प्रकार से बाल–विकास को प्रभावित करता है –

(1) तन्त्रिका तन्त्र की बनावट (Structure of Nervous system)– तन्त्रिका तन्त्र में प्राणी की वृद्धि, सीखना, आदतें विचार और आकांक्षाएं आदि केन्द्रित रहते हैं। तन्त्रिका तन्त्र बालक में वंशानुक्रम से ही प्राप्त होता है। इससे ही ज्ञानेन्द्रियाँ, पेशियाँ तथा ग्रन्थियाँ आदि प्रभावित होती रहती हैं। छात्र की प्रतिक्रियाएँ तन्त्रिका तन्त्र पर निर्भर करती है। अतः हम बालक के तन्त्रिका तन्त्र के विकास को सामान्य, पिछड़ा एवं असामान्य आदि भागों में विभाजित कर सकते हैं। बालक का भविष्य तन्त्रिका तन्त्र की बनावट पर भी निर्भर करता है।

(2) बुद्धि पर प्रभाव (Effect on Intelligence)– मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों में यह स्पष्ट कर दिया है कि वंशानुक्रम के द्वारा ही छात्र में बुद्धि आती है। अतः बुद्धि को जन्मजात माना जाता है। 'स्पियरमैन' ने बुद्धि में विशिष्ट एवं सामान्य तत्वों को वंशानुक्रम की देन माना है। बालक की बुद्धि वंशानुक्रम से ही निश्चित होती है।

(3) मूल प्रवृत्तियों पर प्रभाव (Effect on Instincts) मूल प्रवृत्ति बालक बालक के व्यवहार को शक्ति प्रदान करती है। इसको हम देख नहीं सकते बल्कि व्यक्ति के व्यवहार को देखकर पता लगाते हैं कि कौन सी मूल प्रवृत्ति जागृत होकर व्यवहार का संचालन कर रही है? मैक्डूगल महोदय ने इनका पता लगाया था और इनको जानने के लिए उन्होंने प्रत्येक मूल प्रवृत्ति के साथ एक संवेग को भी जोड़ दिया, जो मूल प्रवृत्ति का प्रतीक होता है। संवेग को देखकर मूल प्रवृत्ति का पता

लगाया जाता है। आपने यह भी स्पष्ट किया है कि ये भी वंश से ही प्राप्त होते हैं। मूल प्रवृत्तियाँ एवं सहयोगी संवेग निम्नवत् हैं–

मूल प्रवृत्ति	संवेग
1. पलायन	भय
2. निवृत्ति	घृणा
3. जिज्ञासा	आश्चर्य
4. युयुत्सा	क्रोध
5. आत्मगौरव	सकारात्मक आत्मानुभूति

4. स्वभाव का प्रभाव (Effect of Nature)– बालक के स्वभाव का प्रकटीकरण उनके माता–पिता के स्वभाव के अनुकूल होता है। यदि बालक के माता–पिता मीठा बोलते हैं तो उसका स्वभाव भी मीठा बोलने वाला होगा। इसी प्रकार से क्रोधी एवं निर्दयी स्वभाव वाले माता–पिता के बालक भी निर्दयी एवं क्रोधी होते हैं। शैल्डन महोदय ने मानव स्वभाव का अध्ययन कर उसे तीन भागों में विभाजित किया है:

(a) **विसेरोटोनिया** (Viscerotonia) इस स्वभाव के व्यक्ति समाजप्रिय, आरामपसन्द, हँसमुख और स्वादिष्ट भोजन में रुचि रखने वाले होते हैं।

(b) **सोमेटोटोनिया** (Somatotonia)– इस प्रकार के स्वभाव के व्यक्ति महत्वाकांक्षी, क्रोधी, निर्दयी, सम्मानप्रिय और दृढ़ प्रतिज्ञ आदि विशेषताओं वाले होते हैं।

(c) **सेरेब्रोटोनिया** (Cerebrotonia)– इस स्वभाव के व्यक्ति चिन्तनशील, एकान्तप्रिय, नियन्त्रण पसन्द एवं विचारशील होते हैं।

(5) शारीरिक गठन (Physical Structure)– बालक का शारीरिक गठन एवं शरीर की बनावट उसके वंशजों पर निर्भर करती है। कार्ल पियरसन ने बताया है कि माता–पिता की लम्बाई, रंग एवं स्वास्थ्य आदि का प्रभाव बालकों पर पड़ता है। 'क्रेश्मर' महोदय ने एक अध्ययन कर शारीरिक गठन के आधार पर सम्पूर्ण मानव जाति को तीन भागों में बाँटा है–

(a) **पिकनिक** (Picnic)– इस प्रकार का व्यक्ति शरीर से मोटा, कद में छोटा, गोल–मटोल और अधिक चर्बीयुक्त होता है। उसका सीना चौड़ा लेकिन दबा हुआ तथा पेट निकला हुआ होता है।

(b) **ऐथलैटिक** (Athletic)– इस प्रकार का व्यक्ति शारीरिक क्षमताओं के आधार से युक्त होता है जैसे–सिपाही या खिलाड़ी।

(c) **ऐस्थेनिक** (Asthenic)– इस प्रकार का व्यक्ति दुबला–पतला और शक्तिहीन शरीर का होता है तथा यह संकोची स्वभाव का होता है। यह लोग किसी भी प्रकार से अन्य लोगों को प्रभावित नहीं कर पाते हैं।

(6) व्यावसायिक योग्यता पर प्रभाव (Effect on vocational Ability)– बालकों में माता–पिता की व्यावसायिक योग्यता की कुशलता भी हस्तान्तरित होती हैं। 'कैटेल' ने 885 अमेरिकन वैज्ञानिकों के परिवारों का अध्ययन कर पाया कि उनमें से 2/5 व्यवसायी वर्ग, 1/2 भाग उत्पादक वर्ग और केवल 1/4 भाग कृषि वर्ग के थे। अतः स्पष्ट है कि व्यावसायिक कुशलता वंश पर आधारित होती है।

(7) सामाजिक स्थिति पर प्रभाव (Effect on Social status)– जो लोग वंश से अच्छा चरित्र, गुण या सामाजिक स्थिति सम्बन्धी विशेषताओं को लेकर उत्पन्न होते हैं, वे ही सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। 'विनसिप महोदय का मत है कि ''गुणवान एवं प्रतिष्ठित माता–पिता की सन्तान ही प्रतिष्ठा प्राप्त करती है।'' जैसे 'रिचर्ड एडवर्ड' नामक परिवार के रिचर्ड एक प्रतिष्ठित नागरिक थे। इनकी सन्तानें विधानसभा के सदस्य एवं महाविद्यालयों के अध्यक्ष आदि प्रतिष्ठित पदों पर आसीन हुए। अतः स्पष्ट है कि सामाजिक स्थिति वंशानुक्रमणीय होती है। (सोचें)

- शिक्षकों के लिये वंशानुक्रम का अध्ययन क्यों आवश्यक है ? चर्चा कीजिए।

.....

प्रश्न– बालक के विकास पर वंशानुक्रम का प्रभाव स्पष्ट कीजिए ?

प्रश्न– वंशानुक्रम के सिद्धान्तों एवं नियमों को स्पष्ट कीजिए ?

वातावरण (पारिवारिक, सामाजिक, विद्यालयी, संचार माध्यम

वातावरण का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Environment)

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- वातावरण का अर्थ एवं परिभाषाएँ
- बाल–विकास पर वातावरण का प्रभाव
- बालक के विकास को प्रभावित करने वाले वातावरणीय कारक

'वातावरण' के लिए 'पर्यावरण' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। पर्यावरण दो शब्दों से मिलकर बना है– 'परि +आवरण'। 'परि' का अर्थ है– 'चारों ओर' एवं 'आवरण' का अर्थ है–'ढकने वाला'। इस प्रकार पर्यावरण या वातावरण वह वस्तु है जो चारों ओर से ढके हुए है। अतः हम कह सकते हैं कि व्यक्ति के चारों ओर जो कुछ है, वह उसका वातावरण है। इसमें वे सभी तत्व सम्मिलित है, जो मानव के जीवन व व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

वातावरण के अर्थ को अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

(1) एनास्टासी के अनुसार –''वातावरण वह प्रत्येक वस्तु है, जो व्यक्ति के जीन्स के अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु को प्रभावित करती है।''

(2) वुडवर्थ के शब्दो में – ''वातावरण में सब वाह्य तत्व आ जाते हैं जिन्होंने व्यक्ति को जीवन आरम्भ करने के समय से प्रभावित किया है।''

(3) रॉस के अनुसार – ''वातावरण वह बाहरी शक्ति है जो हमें प्रभावित करती है।''

(4) जिस्बर्ट के शब्दों में –''वातावरण वह हर वस्तु है जो किसी अन्य वस्तु को घेरे हुए है और उस पर सीधे अपना प्रभाव डालती है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि वातावरण व्यक्ति को प्रभावित करने वाला तत्व है। इसमें बाह्य तत्त्व आते हैं। यह किसी एक तत्त्व का नहीं अपितु एक समूह तत्त्व का नाम है। वातावरण व्यक्ति को उसके विकास में वांछित सहायता प्रदान करता है।

बोध प्रश्न–

- वातावरण की अवधारणा स्पष्ट करते हुए कोई एक परिभाषा लिखिए।

.....

बाल–विकास पर वातावरण का प्रभाव (Influence of Environment on child Development)

बालक के व्यक्तित्व के प्रत्येक पहलू पर भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण का प्रभाव पड़ता है। वंशानुक्रम के साथ–साथ वातावरण का भी प्रभाव बालक के विकास पर पड़ता है। हम यहाँ इन पक्षों पर विचार करेंगे, जो वातावरण से प्रभावित होते हैं–

(1) मानसिक विकास पर प्रभाव – गोर्डन का मत है कि उचित सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण न मिलने पर मानसिक विकास की गति धीमी हो जाती है। बालक का मानसिक विकास सिर्फ बुद्धि से ही निश्चित नहीं होता है। बल्कि उसमें बालक की ज्ञानेन्द्रियाँ, मस्तिष्क के सभी भाग एवं मानसिक क्रियाएँ आदि सम्मिलित होती है। अतः बालक वंश से कुछ लेकर उत्पन्न होता है, उसका विकास उचित वातावरण से ही हो सकता है। वातावरण से बालक की बौद्धिक क्षमता में तीव्रता आती है और मानसिक प्रक्रिया का सही विकास होता है।

(2) शारीरिक अन्तर पर प्रभाव –फ्रेंच बोन्स का मत है कि विभिन्न प्रजातियों के शारीरिक अन्तर का कारण वंशानुक्रम न होकर वातावरण है। उन्होंने अनेक उदाहरणों से स्पष्ट किया है कि जो जपानी और यहूदी, अमरीका में अनेक पीढ़ियों से निवास कर रहे हैं, उनकी लम्बाई भौगोलिक वातावरण के कारण बढ़ गयी है।

(3) व्यक्तित्व विकास पर प्रभाव –कूले का मत है कि व्यक्तित्व के निर्माण में वंशानुक्रम की अपेक्षा वातावरण का अधिक प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति का विकास आन्तरिक क्षमताओं का विकास करके और नवीनताओं को ग्रहण करके किया जाता है। इन दोनों ही परिस्थितियों के लिए उपयुक्त वातावरण को उपयोगी माना गया है। कूल महोदय ने यूरोप के 71 साहित्यकारों का अध्ययन कर पाया कि उनके व्यक्तित्व का विकास स्वस्थ वातावरण में पालन–पोषण के द्वारा हुआ।

(4) शिक्षा पर प्रभाव –बालक की शिक्षा बुद्धि, मानसिक प्रक्रिया और सुन्दर वातावरण पर निर्भर करती है। शिक्षा का उद्देश्य बालक का सामान्य विकास करना होता है। अतः शिक्षा के क्षेत्र में बालकों का सही विकास उपयुक्त शैक्षिक वातावरण पर ही निर्भर करता है। प्रायः यह देखने में आता है कि उच्च बुद्धि वाले बालक भी सही वातावरण के बिना उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

(5) सामाजिक गुणों का प्रभाव –बालक का सामाजीकरण उसके सामाजिक विकास पर निर्भर होता है। समाज का वातावरण उसे सामाजिक गुण एवं विशेषताओं को धारण करने के लिए उन्मुख करता है। न्यूमैन,फ्रीमैन एवं होलिंजगर ने 20 जोड़े बालकों का अध्ययन किया। आपने जोड़े के एक बालक को गाँव में और दूसरे बालक को नगर में रखा। बड़े होने पर गाँव के बालक में अशिष्टता, चिन्ताएँ, भय, हीनता और कम बुद्धिमता सम्बन्धी आदि विशेषताएँ पायी गयीं, जबकि शहर के बालक में

शिक्षित व्यवहार, चिन्तामुक्त, भयहीन एवं निडरता और बुद्धिमता सम्बन्धी विशेषताएँ पायी गयीं। अतः स्पष्ट है कि वातावरण सामाजिक गुणों पर भी प्रभाव डालता है।

विचार करें–

- क्या वातावरण, सामाजिक गुणों एवं विशेषताओं को धारण करने में सहायक होता है ?

.....

(6) बालक पर बहुमुखी प्रभाव –वातावरण, बालक को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक आदि सभी अंगों पर प्रभाव डालता है। बालक का सर्वांगीण या बहुमुखी विकास तभी सम्भव है जब उसे अच्छे वातावरण में रखा जाए। यह वातावरण ऐसा हो, जिसमें बालक की वंशानुक्रमीय विशेषताओं का सही प्रकाशन हो सके। भारत एवं अन्य देशों में जिन बालकों को जंगली जानवर उठा ले गये और उनको मारने के स्थान पर उनका पालन–पोषण किया। ऐसे बालकों का सम्पूर्ण विकास जानवरों जैसा था, बाद में उनको मानव वातावरण देकर सुधार लिया गया। अतः स्पष्ट है कि वातावरण ही बालक के सर्वांगीण विकास में सहायक होता है।

बालक के विकास को प्रभावित करने वाले वातावरणीय कारक (Effecting Environmental Factors of child Development)

बालक के विकास को प्रमुख रूप से आनुवांशिकता तथा वातावरण प्रभावित करते हैं। इसी प्रकार कुछ विभिन्न कारक और भी है, जो बालक के विकास में या तो बाधा पहुँचाते हैं या विकास को अग्रसर करते हैं। ऐसे प्रभावी कारक निम्नलिखित है–

(1) बालकों के लालन–पालन या संरक्षण की दशाएँ (conditions of childs care) बालक के विकास पर उसके लालन–पालन तथा माता–पिता की आर्थिक स्थितियाँ प्रभाव डालती हैं। परिवार की परिस्थितियों तथा दशाओं का बालक के विकास पर सदैव प्रभाव पड़ता है। बालक के लालन–पालन में परिवार का अत्यधिक महत्व होता है। बालक के जन्म से किशोरावस्था तक उसका विकास परिवार ही करता है। स्नेह, सहिष्णुता, सेवा, त्याग, आज्ञापालन एवं सदाचार आदि का पाठ परिवार से ही मिलता है। परिवार मानव के लिये एक अमूल्य संस्था है।

(1) रूसो के अनुसार –''बालक की शिक्षा में परिवार का महत्वपूर्ण स्थान है। परिवार ही बालक को सर्वोत्तम शिक्षा दे सकता है। यह एक ऐसी संस्था है, जो मूलरूप से प्राकृतिक है।''

(2) फ्रॉवेल के अनुसार –''फ्रॉबेल ने घर को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उनका यह कथन–माताएँ आदर्श अध्यापिकाएँ हैं और घर द्वारा दी जाने वाली अनौपचारिक शिक्षा ही सबसे अधिक प्रभावशाली और स्वाभाविक है।''

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि बालक के विकास में परिवार एक अहम संस्था की भूमिका अदा करता है। बालक के लालन–पालन में परिवार के शैक्षणिक कार्य निम्नलिखित हैं–

(i) परिवार बालक की मानसिक एवं भावात्मक प्रवृत्ति के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यदि परिवार का वातावरण वैज्ञानिक या साहित्यिक है तो बालक का झुकाव वैसा ही होगा।

(ii) मॉण्टेसरी के अनुसार सीखने का प्रथम स्थान माँ की गोद है। बालक की सभी मूल–प्रवृत्तियों का शोधन धीरे–धीरे परिवार के सदस्यों द्वारा ही होता रहता हे।

(iii) परिवार बालक में स्वस्थ आदतों के निर्माण में सहायक होता है। बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक बालक कुछ न कुछ आदतें परिवार में रहकर अन्य सदस्यों से सीखता है।

(iv) अनुकूलन का पाठ बालक परिवार से ही सीखता है क्योंकि परिवार के सदस्य एक दूसरे से समायोजन कर अपनी समस्याएँ हल करते हैं।

(v) परिवार बालक के सामाजीकरण का आधार है। बालक स्वयं सामाजिक जीवन की क्रियाओं तथा सामाजिक गुणों को यही से सीखता है।

(vi) बालक को व्यावहारिक जीवन की शिक्षा भी परिवार से ही मिलती है।

(vii) परिवार में रहकर बालक अपने बड़ों के प्रति सम्मान का भाव तथा आज्ञापालन की भावना को ग्रहण करता है। परिवार के सभी सदस्यों से वह कर्तव्यपरायणता, आत्मसंयम तथा अनुशासन की शिक्षा प्राप्त करता है।

इस प्रकार बालक के लालन–पालन में परिवार का योगदान सराहनीय है।

सोंचं व विचार करें– कि

- क्या परिवार की परिस्थिति व दशा का बालक के विकास पर प्रभाव पड़ता है .... ।

(2) सामाजिक वातावरण एवं उसका प्रभाव (Social Environment and Its Effect)

बालक को प्रभावित करने में परिवार का वातावरण अपनी भूमिका का निर्वहन करता है। समाज द्वारा बालकों पर विभिन्न प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं। विद्यालय में अनेक परिवारों से आये बालक अपने साथ अलग–अलग वातावरणीय सोच लेकर आते हैं। परन्तु विद्यालय का वातावरण एक सुनिश्चित, अनुशासित एवं शिक्षा हेतु संगठित वातावरण होता है। कहीं–कहीं तो बाहर का वातावरण विद्यालय के वातावरण से पूर्णतः विरोधी होता है। हमारा देश विविधताओं का देश है। जैसे– भाषा की विविधता, सम्प्रदाय तथा जाति की विविधता, साधनहीन तथा सम्पन्नता की विविधता हमारे बाहरी

वातावरण की मुख्य समस्याएँ है। इन सभी वातावरणीय समस्याओं से निकलकर जब बालक विद्यालय में अध्ययन करने आता है तब समस्त कठिनाइयाँ विद्यालय को झेलनी पड़ती हैं तथा उनका समाधान खोजना पड़ता है। वैसे वातावरण का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। वातावरण को हम दो भागों में बॉट सकते हैं–

(1) आन्तरिक वातावरण –आन्तरिक वातावरण जन्म से पूर्व ही अपना प्रभाव डालना प्रारम्भ कर देता है। गर्भावस्था बालक के विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण समय है।

(2) वाह्य वातावरण –बालक के वाह्य वातावरण के अन्तर्गत जाति, समाज, राष्ट्र तथा उसकी संस्कृति को लिया जा सकता है। इस प्रकार के वातावरण की परिस्थितियाँ प्रत्येक देश में प्रत्येक काल में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती है। परिवार में यह कार्य माता–पिता अपने बालकों को पूर्ववत् चले आये रीति–रिवाज, भाषा, संस्कृति, साहित्य, जातीय जीवन दर्शन आदि का पाठ व्यवहार द्वारा सिखाते हैं, जबकि विद्यालय बालकों में राष्ट्रीयता एवं मूल्यों का विकास आदि के भाव विकसित करती है।

अतः स्पष्ट है कि बालक का स्वभाव, व्यवहार, अभिव्यक्ति, विकास तथा प्रौढ़ता सभी कुछ वाह्य वातावरण से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते है।

बोध प्रश्न–

- वाह्य वातावरण एवं बाल–विकास के संबंध को संक्षेप में लिखिए .....
  ..... ।.

(3) विद्यालय की आन्तरिक स्थितियों का प्रभाव–(Effect of Internal Situations of School)- बालक जब विद्यालय में प्रवेश लेता है तो विद्यालय में अधिक सुलभ साधनों की अपेक्षा रखता है। यहाँ हम उन बिन्दुओं पर चर्चा करेंगे, जिनसे बालक शिक्षा की ओर उन्मुख होता है–

(1) विद्यालय का वातावरण –शिक्षकों का व्यवहार बालको के प्रति अति सरल, सौम्य एवं स्नेहमयी होना चाहिए जिससे बालक को घर की याद न आयें। विद्यालय का भवन, साफ, स्वच्छ तथा सुविधाओं से युक्त होना चाहिए। एक शिक्षक पर बीस या पच्चीस तक बालकों की संख्या होनी चाहिए। एक अच्छे विद्यालय में पठन–पाठन की सामग्री, बालकों के खेलने के सुन्दर खिलौने, बाग–बगीचे आदि भौतिक संसाधन होने चाहिए जिससे बालक विद्यालय के प्रति आकर्षित हो सकें।

(2) समय विभाजन चक्र –विद्यालय में बड़े छात्रों की अपेक्षा छोटे आयु वर्ग के छात्रों के समय विभाजन चक्र में अधिक अन्तर रहता है। छोटे बच्चों की शाला प्रातः 9.30 से 12.30 तक ही संचालित करना चाहिए। इस अवधि में अल्प भोजन, विश्राम, स्वास्थ्य निरीक्षण तथा प्रार्थना सभा

आदि के लिये समय नियत किया जाय। विद्यालयी शिक्षा के अन्तर्गत बाल–विकास में निम्नलिखित अभिकरण पर्याप्त सहायता पहुँचा रहे हैं–

शिशु–क्रीड़ा केन्द्र– प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए नगरीय क्षेत्रों में किण्डर गार्टन, माण्टेसरी और नर्सरी विद्यालय चल रहे हैं परन्तु ये शिक्षा संस्थाएँ शहरी धनवानों के शिशुओं को ही शिक्षा प्रदान कर रही हैं। इस दोष को दूर करने के लिए अब ग्रामीण क्षेत्र के बालकों की शिक्षा पूर्ति के लिए तथा पूर्व प्राथमिक शिक्षा के लिये कोठारी आयोग की सिफारिशों के आधार पर शिशु–क्रीड़ा केन्द्रों या आँगनबाड़ी की व्यवस्था की गयी है।

ये शिशु क्रीड़ा केन्द्र बालकों को प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए तैयार करते हैं जिससे बालक विद्यालय के वातावरण से परिचित हो जाते है। ये केन्द्र बालकों के शारीरिक मानसिक एवं संवेगात्मक विकास में सहायक होते हैं। ये केन्द्र बालकों में स्वस्थ आदतों का निर्माण कर खेल–खेल में आत्मनिर्भरता, कलात्मकता तथा सृजनात्मकता जैसे गुणों का विकास करते हैं। इस प्रकार विद्यालय का वातावरण एवं परिस्थितियाँ बालक के विकास को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक है।

प्रशिक्षु चर्चा करें–

- बाल–विकास के सन्दर्भ में शिशु–क्रीड़ा केन्द्रों की भूमिका .....
  .....।

(4) संचार माध्यमों का प्रभाव (Effect of Mass-Media)– मानव समाज में अपने समुदाय एवं अन्य व्यक्तियों के प्रति निरन्तर अन्तः प्रतिक्रियाएँ करता रहता है। इस अन्तः प्रतिक्रिया का व्यापक आधार है– संचार एवं सम्प्रेषण। संचार पर ही सभी प्रकार के मानव सम्बन्ध आधारित होते है। संचार की प्रक्रिया सामाजिक एकता एवं सामाजिक संगठन की निरन्तरता का आधार है। इसके विकास एवं विभिन्न समाजों के मध्य संचार की स्थापना पर सामाजिक प्रगति निर्भर करती है। जिस देश में जितने प्रबल एवं अत्याधुनिक संचार साधन उपलब्ध है, वह देश उतना ही अधिक विकसित कहा जाता है।

इस प्रकार जब एक व्यक्ति या अनेक व्यक्तियों के द्वारा सूचनाओं के आदान–प्रदान का कार्य व्यापक स्तर पर होता है तब यह प्रक्रिया 'जन–संचार' कहलाती है। संचार एवं जन–संचार के अन्तर का स्पष्टीकरण टेलीफोन तथा रेडियो के उदाहरण से समझा जा सकता है। जब एक व्यक्ति टेलीफोन पर दूसरे व्यक्ति से बात करता है तो यह संचार है, लेकिन जब वही व्यक्ति रेडियो पर अपनी बात असंख्य लोगों से कहता है तो इसे जन–संचार कहते हैं।

जनसंचार के माध्यम (Media of Mass Communication) – इसमें ऐसे माध्यम भी शामिल हैं, जो जनसंचार के आधुनिक साधनों का उपयोग करते हैं जैसे–रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, समाचार–पत्र और विज्ञापन आदि। भारत में सूचना और प्रसारण मन्त्रालय के पास जन–संचार की विशाल व्यवस्था है, जिसके क्षेत्रीय तथा शाखा कार्यालय सम्पूर्ण देश में फैले हुए हैं।

कक्षा–कक्ष में जनसंचार माध्यमों की उपयोगिता–कक्षीय परिस्थितियों में अधिकतम शिक्षण अधिगम की प्रभावशाली परिस्थितियाँ उत्पन्न करने के लिए शिक्षा तकनीकी के जनसंचार माध्यमों का प्रयोग एक उत्तम साधन है। हमारे देश के विद्यालयों में कुछ नवीन विधियों जैसे–फिल्म, फिल्म–पट्टिकाएँ, प्रोजेक्टर, रेडियो आदि का प्रयोग किया जाने लगा है। इसी प्रकार रेडियो पाठों का विद्यालय पाठ्यक्रम में विधिवत् प्रयोग किया जाना चाहिए।

(1) रेडियो का प्रभाव–रेडियो संचार माध्यमों के अन्तर्गत एक प्रभावशाली श्रव्य साधन है। रेडियो पर शैक्षिक पाठों के प्रसारण से दूर–दराज के बालकों को अत्यधिक लाभ पहुँचता है। इसके अन्तर्गत कुशल अध्यापकों के शिक्षण पाठ, भाषण एवं अन्य ज्ञान वृद्धि सम्बन्धित कहानियाँ/नाटक आदि होते हैं।

(2) दूरदर्शन का प्रभाव– आधुनिक युग में दूरदर्शन सम्प्रेषण संचार क्रिया का एक शक्तिशाली माध्यम है। इसमें श्रवण तथा दृश्य सम्बन्धी इन्द्रियों का प्रयोग होता है। इसमें किसी भी घटना को फिर से रिकार्ड कर देखने तथा सुनने की व्यवस्था होती है। इसे चलाने तथा बन्द करने की क्रिया भी सरल है। शैक्षिक दूरदर्शन, छात्रों को प्रेरित करने में, उनकी सृजनात्मक क्षमता को बढ़ाने में तथा उच्च स्तरीय शिक्षण प्रदान करने सहायता प्रदान करता है।

(3) कम्प्यूटर का प्रभाव –शिक्षा में कम्प्यूटर का उपयोग विज्ञान की महान् उपलब्धि है। इसके द्वारा जन–शिक्षा, स्वास्थ्य, राष्ट्रीय–एकता की शिक्षा आदि को सफलतापूर्वक प्रदान किया जा रहा है। कम्प्यूटर के माध्यम से सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन सम्भव हो पाया है। आज कम्प्यूटर एक विषय के रूप में कक्षाओं में पढ़ाया जाता है जिससे छात्रों को देश–विदेश से सम्बन्धित किसी भी सूचना की जानकारी कुछ क्षणों में ही प्राप्त हो जाती है।

बोध प्रश्न–

- बाल विकास के प्रभावी कारक संचार–माध्यम की उपयोगिता की चर्चा कीजिए ?

.....

मूल्यांकन

(1) बालकों के विकास को वातावरण कैसे प्रभावित करता है ?

(2) बालक के विकास को प्रभावित करने वाले वातावरणीय कारकों पर प्रकाश डालिए।

अधिगम (Learning)

शिक्षण के मुख्य बिन्दु

- अधिगम का अर्थ
- अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक

मनुष्य में सीखने का क्रम जन्म से मृत्यु तक चलता रहता है। कुछ सीखने के बाद मानव अनुभवों के आधार पर कार्यरूप देने का प्रयास करता है जिससे उसके व्यवहार में परिवर्तन आता है। व्यवहार में होने वाले इन परिवर्तनों को ही सीखना अथवा अधिगम कहते है। वास्तव में सीखने की प्रक्रिया व्यक्ति की शक्ति और रुचि के कारण विकसित होती है। बच्चों में स्वयं अनुभूति द्वारा भी सीखने की प्रक्रिया होती है, जैसे–बालक किसी जलती वस्तु को छूने का प्रयास करता है और छूने के बाद की अनुभूति से वह यह निष्कर्ष निकालता है कि जलती हुई वस्तु को छूना नहीं चाहिए।

अधिगम की यह प्रक्रिया सदैव एक समान नही रहती है। इसमें प्ररेणा के द्वारा वृद्धि एवं प्रभावित करने वाले कारकों से इसकी गति धीमी पड़ जाती है।

वुडवर्थ के अनुसार ''नवीन ज्ञान और नवीन प्रतिक्रियाओं को प्राप्त करने की प्रक्रिया सीखने की प्रक्रिया है।''

क्रो एण्ड क्रो के अनुसार ''सीखना, आदतों, ज्ञान और अभिवृत्तियों का अर्जन है।''

स्किनर के अनुसार ''सीखना, व्यवहार में उत्तरोत्तर सामंजस्य की एक प्रक्रिया है।''

उपर्युक्त अर्थ एवं परिभाषा के आधार पर सीखने की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं–

- सीखना, सार्वभौमिक है।
- सीखना, अनुभवों की नवीन व्यवस्था है।
- सीखना, वातावरण एवं क्रियाशीलता की उपज है।
- सीखना, समायोजन है।
- सीखना, जीवन भर चलने वाली सतत प्रक्रिया है।
- सीखना, व्यवहार में परिवर्तन है।

सोचें और बताएँ–

आप किसी विषय वस्तु को कैसे सीखते हैं ?

.....

..... ।

शिक्षण–अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Influencing Teaching-Learning Process)

इन्हें भी जाने–
शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के पाँच अंग होते है–
1. शिक्षार्थी (Student)
2. शिक्षक (Teacher)
3. पाठ्यपुस्तक (Content)
4. शिक्षण विधि (Teaching Method)
5. शिक्षण अधिगम

सीखना शिक्षण द्वारा ही सम्पन्न होता, चाहे वह शिक्षण प्रक्रिया सीखने वाले द्वारा अपनाई जाए या अध्यापक द्वारा। शिक्षण का उद्देश्य ही है 'सीखना'। शिक्षण का अर्थ तभी सार्थक होता है, जब कोई इस प्रक्रिया से सीखता है। मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम को प्रभावित करने वाले कारकों की भी खोज की है। ये कारक निम्नलिखित है–

1. बालक का शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य (Physical and Mental Health of Children)

प्रायः देखा जाता है कि शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ्य बालक सीखने में रुचि लेता है। थकान का प्रभाव कम होने से छात्र जल्दी सीखते हैं। शारीरिक और मानसिक दृष्टि से पिछड़े बच्चे प्रायः पढ़ने लिखने में कमजोर रहते हैं और वे देर से सीखते हैं।

परिवक्वता (Maturity) व्यक्ति की आयु बढ़ने के साथ–साथ उसकी परिपक्वता भी बढ़ती है। शारीरिक एवं मानसिक रूप से परिपक्व होने पर सीखने की गति बढ़ जाती है, जिससे सीखने का स्तर भी बढ़ जाता है। इसके विपरीत यदि आयु एवं परिपक्वता के अनुरूप अधिगम सामग्री नहीं है तो अधिगम सामग्री ग्रहण करने में कठिनाई होगी।

3. **सीखने की इच्छा** (Will to learn)– सीखना बहुत कुछ व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर करता है जिस बात को सीखने के लिए बच्चों में प्रबल इच्छा होती है, उसे सीखने उतना ही शीघ्र होता है। उनकी इच्छा के विरूद्ध उन्हें कुछ नहीं सिखाया जा सकता है।
4. **प्रेरणा** (Motivation)–सीखने के लिए बच्चों को प्रेरित करना अत्यंत आवश्यक है। इसलिए समय–समय पर प्रशंसा, प्रोत्साहन तथा प्रतियोगिता के आधार पर सीखना चाहिए तो वे सुगमता से सीख जाते है।
5. **विषय सामग्री का स्वरूप** (Nature of subject matter)–प्रत्येक स्तर के छात्रों के लिए उनकी बुद्धि, रुचि एवं अभिक्षमता के अनुरूप पाठ्यवस्तु सरल, रोचक एवं अर्थपूर्ण होने पर छात्र उन्हें रुचिपूर्ण एवं शीघ्रता से सीखते है। कठिन, नीरस तथा अर्थहीन विषय–सामग्री बच्चे शीघ्रता से नहीं सीख पाते हैं।

6. **वातावरण** (Environment)–भौतिक एवं सामाजिक वातावरण दोनों ही शिक्षण अधिगम को प्रभावित करते हैं। शुद्ध वायु, उचित प्रकाश, शान्त वातावरण एवं मौसम की अनुकूलता के बीच बच्चे शीघ्र सीखते है। इसके अभाव में वे शीघ्र थक जाते हैं तथा अधिगम प्रक्रिया बाधित होती है।

इसी प्रकार यदि परिवार, समाज, समुदाय और विद्यालय आदि सभी स्थानों पर छात्रों को सामाजिक एवं शैक्षिक वातावरण मिलता है तो शिक्षण अधिगम प्रक्रिया प्रभावी होती है अन्यथा उसमें बाधा उत्पन्न होती है।

शारीरिक एवं मानसिक थकान (Physical and Mental Fatigue)– शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के लिए समय–सारिणी का बड़ा महत्व है। कठिन विषय थोड़े समय में ही छात्रों का थका देते हैं। इसलिए समय सारिणी में कठिन विषयों को पहले एवं सरल विषयों को बाद में स्थान दिया जाता है। कालांशो के बीच विश्रान्तिकाल (Interval) का भी ध्यान रखना चाहिए, इससे थकान का प्रभाव कम हो जाता है तथा छात्र जल्दी सीखते है। थकान की स्थिति होने पर अधिगम प्रक्रिया बाधित होती है।

इसके अतिरिक्त अधिगम को प्रभावी बनाने वाले अन्य कारक भी हैं–

बुद्ध, रुचि, अभिक्षमता, जीवन का लक्ष्य, विशय का ज्ञान, व्यवहार, व्यक्तित्व, शिक्षण विधि, बालकेन्द्रित शिक्षा, अनुशासन, पाठ्यवस्तु का संगठन एवं उसका जीवन से सम्बन्ध

पुनरावृत्ति बिन्दु

1. सीखना जीवन भर चलने वाली सतत् प्रक्रिया है।
2. सीखना व्यवहार में परिवर्तन है।
3. अधिगम को प्रभावित करने वाले कारकों में बालक का शारीरिक व मानसिक स्वाथ्य, परिपक्वता, सीखने की इच्छा, प्रेरणा, विषय सामग्री का स्वरूप, वातावरण, शारीरिक एवं मानसिक थकान आदि प्रमुख है।

बोध प्रश्न

- अधिगम की एक परिभाषा लिखिए। .....
  .....।
- शारीरिक एवं मानसिक थकान सीखने की प्रक्रिया को किस प्रकार प्रभावित करता है ? समझाए
  .....
  .....।

अधिगम की प्रभावशाली विधियाँ (Effective Methods of Learning)

प्रमुख बिन्दु

अधिगम की प्रमुख प्रभावशाली विधियाँ–

- करके सीखना
- अनुकरण द्वारा सीखना
- निरीक्षण करके सीखना
- परीक्षण करके सीखना
- सामूहिक विधियों द्वारा सीखना
- सम्मेलन व विचार गोष्ठी विधि
- प्रोजेक्ट विधि
- समूह अधिगम

किसी नये पाठ या नई क्रिया को सीखने के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने कुछ प्रमुख विधियों को अधिक उपयोगी एवं प्रभावशाली बताया है, ये विधियाँ इस प्रकार है–

1. करके सीखना (Learning by doing)–इस विधि में छात्र के द्वारा प्रत्येक कार्य में प्रत्यक्ष रूप से भाग लिया जाता है। बच्चे जिस कार्य को स्वयं करते हैं, उसे वे जल्दी सीखते हैं। जब बच्चे किसी कार्य को स्वयं करते हैं तो वे उसके उद्देश्य का निर्माण करते हैं, उसको करने की योजना बनाते हैं और उसे पूर्ण करने की कोशिश करते हैं। यदि उसमें वे असफल रहते हैं तो अपनी गलतियों का पता लगाते हैं तथा उनमें सुधार करने का प्रयत्न करते हैं। आज की शिक्षा प्रणाली इसी विधि पर आधारित ''बाल केन्द्रित'' शिक्षा है।

किसी चीनी लेखक का कथन है

- जब हम सुनते हैं तो भूल जाते हैं,
- जब हम देखते हैं, हम याद रखते हैं,
- जब हम करते हैं, हम समझ जाते हैं।

प्रशिक्षु हेतु– यदि आप भी अपने कक्षा–शिक्षण में करके सीखने की विधि का प्रयोग करते हैं तो बच्चों के अधिगम पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है ? .....
.....।

2. अनुकरण द्वारा सीखना (Learning by Imitation)–अनुकरण द्वारा सीखने की प्रक्रिया शैशवावस्था से ही प्रारम्भ हो जाती है। विद्यालय में बच्चे शिक्षक द्वारा की जाने वाली क्रियाओं का अनुकरण करके सीखते है। इस विधि में शिक्षक छात्र के लिए आदर्श स्वरूप होता है। मनोवैज्ञानिक हैगार्ट महोदय की अनुकरण द्वारा सीखने का सिद्धान्त से भी यह स्पष्ट होता है कि अधिगम की प्रक्रिया अनुकरण के माध्यम से सरल होती है।

3. निरीक्षण करके सीखना (Learning by Observation)– बच्चे जिस वस्तु का निरीक्षण करते हैं, उसके बारे में वे जल्दी और स्थायी रूप से सीख जाते हैं। इसका कारण है कि निरीक्षण करते समय

वे उस वस्तु को छूते हैं, या प्रयोग करते हैं, या आपस में उसके बारे में चर्चा करते हैं, इस प्रकार वे अपने एक से अधिक इन्द्रियों का प्रयोग करते हैं। फलस्वरूप उनके मन–मस्तिष्क पर उस वस्तु का स्पष्ट चित्र अंकित हो जाता है। निरीक्षण पद्धति की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक बच्चों को जिस स्थान पर ले जाये उसे वह पूर्व में ही देख लें तथा उसके बारे में योजना बना ले। इस विधि से सीखने में छात्र की जिज्ञासा एवं उत्सुकता बनी रहती है। सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत भूगोल शिक्षण में इस विधि का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए ताकि बच्चे उसे सहजता से सीख सके।

4. परीक्षण करके सीखना (Learning by Testing)– इसके अन्तर्गत छात्र अपनी आवश्यकता के अनुरूप सामग्री का परीक्षण करते हैं तथा ज्ञान प्राप्त करते हैं जैसे –बच्चे किताब में गिनती को पढ़ते हैं तो प्रथम दृष्टि में उसका कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं होता, परन्तु व्यवहारिक जगत में जब बच्चे स्वयं इसका प्रयोग करते हैं, देखते हैं, तो उसका अधिगम स्थायी रूप ले जेता है। इस विधि को विज्ञान, गणित, सामाजिक अध्ययन एवं नैतिक शिक्षा आदि में प्रयोग किया जा सकता है। इस विधि के माध्यम से बच्चों में आत्मनिर्भरता का विकास होता है क्योंकि इस परीक्षण में वे स्वयं प्रयास करते हैं।

5. सामूहिक विधियों द्वारा सीखना (Learning by Group Methods)–सामूहिक विधियों द्वारा सीखना अधिक सहायक एवं उपयोगी होता है। इस सम्बन्ध में कोलसनिक (Kolsnik) का मत है कि बालक को प्रेरणा प्रदान करने, उसे शैक्षिक लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता देने, उनके मानसिक स्वास्थ्य को उत्तम बनाने, उसके व्यवहार में सुधार करने और उसमें आत्मनिर्भरता तथा सहयोग की भावनाओं का विकास करने के लिए सामूहिक विधियाँ अधिक प्रभावशाली होती है।

मुख्य सामूहिक विधियाँ निम्नलिखित हैं–

1.सम्मेलन व विचार गोष्ठी विधि (Conference & seminar Methods)– इस विधि में किसी विशेष विषय पर छात्र/छात्राओं द्वारा विचार विमर्श, वाद–विवाद एक निश्चित समय में करना होता है। इसमें ऐसे प्रकरण पर विचार किया जाता है जिसमें सभी सदस्यों की रुचि होती है। इसके द्वारा लोगों में सामाजिक एवं भावात्मक गुणों का विकास होता है। इसके द्वारा दूसरों के विरोधी विचारों का सम्मान एवं सहनशीलता की भावना विकसित होती है।

2. प्रोजेक्ट विधि (योजना विधि) (Project Method)–इसमें प्रत्येक छात्र अपनी व्यक्तिगत रुचि, ज्ञान और क्षमता के अनुसार स्वतन्त्र रूप से कार्य करते हैं, जिससे सीखना सरल हो जाता है। सामूहिक रूप से कार्य करने के कारण उनमें स्पर्द्धा, सहयोग और सहानुभूति का भी विकास होता है। इसमें शिक्षक मार्गदर्शक का कार्य करते हैं तथा वह बच्चों को समूहों में बाँट देते हैं। प्रत्येक समूह अपनी इच्छानुसार कोई भी प्रोजेक्ट लेने को स्वतन्त्र होता है। यहाँ शिक्षक को यह ध्यान रखना चाहिए कि

सम्बन्धित कार्य छात्रों के स्तरानुकूल हो तथा वे स्वयं बच्चों का मार्गदर्शन करता रहे, प्रोजेक्ट से सम्बन्धित आवश्यक निर्देश भी देना चाहिए ताकि कार्य ठीक प्रकार से सम्पन्न हो सके। इस विधि से अर्जित ज्ञान स्थायी होता है तथा यह रटने की प्रवृत्ति को भी कम करता है। यह विधि ''बाल केन्द्रित'' है। बच्चों में उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है।

शिक्षक वह धुरी है जिस पर बालकेन्द्रित शिक्षा कार्यरत है।

3. समूह अधिगम (Group Learning)– इस अधिगम के अन्तर्गत सीखने वालों को विभिन्न समूह में बाँट दिया जाता है। सीखने वाले को अपने साथियों के साथ खुले मन से विषय–वस्तु पर आधरित अपने विचारों एवं भावों को अभिव्यक्त करने का अवसर मिलता है। इसका प्रमुख उद्देश्य छात्रों को अपनी समस्याओं को स्वयं निराकरण करने के लिए प्रोत्साहित करना तथा उन्हें समाधान निकालने के लिए अवसर प्रदान करना होता है। आवश्यकता पड़ने पर इस शिक्षक से सहायता प्राप्त कर सकते हैं। समूह अधिगम में छात्र अधिक स्वतंत्र होने के कारण समस्या के समाधान में अपने विचारों को पूर्णरूप से प्रकट कर सकते हैं।

अच्छे शिक्षक के गुण–

- गतिविधियों के निर्माण की क्षमता
- स्पष्ट निर्देश
- बच्चे की मानसिक क्षमता पहचानना
- निरन्तर सीखने वाला
- विषयवस्तु का पर्याप्त ज्ञान
- झिझक न होना
- पूर्व ज्ञान से जोड़ना
- शिक्षण पूर्व योजना
- वक्ता के साथ श्रोता
- भयमुक्त कक्षा
- पूर्वाग्रह मुक्त
- पक्षपात रहित व्यवहार।

ध्यान देने योग्य बातें

निष्कर्ष रूप से –

अधिगम विधियाँ कैसी हों–

- किसी भी विषय का शिक्षण बच्चों के पूर्व ज्ञान एवं अर्जित क्षमताओं पर निर्भर करता है।
- सीखने की विधियाँ–शिक्षण के उद्देश्य, सीखने की विषय वस्तु एवं विकसित की जाने वाली दक्षताओं पर निर्भर करती हैं।
- सीखने की विधियाँ ऐसी हो, जो बच्चों को सीखने में आत्मनिर्भर बनाएँ।
- बच्चे स्वतंत्र रूप से सीखने के लिए प्रेरित हों
- वे सीखने में आनन्द अनुभव करें।
- उनमें आपस में सहयोग की भावना विकसित हों।

पुनरावृत्ति बिन्दु

- अधिगम विधियाँ क्रियाओं के संचालन का एक विशिष्ट अंग है।
- शिक्षक जब अपने शिक्षण को छात्रों के स्तरानुसार रुचिकर, बोधगम्य, तार्किक एवं सरलतम बनाता है, तभी वह अपने कक्षा–शिक्षण में सफल होता है। इसलिए शिक्षक/प्रशिक्षु के लिए अधिगम की प्रभावशाली विधियों का ज्ञान बहुत आवश्यक है।
- अधिगम की प्रभावशाली विधियाँ हैं–करके सीखना, अनुकरण द्वारा सीखना, निरीक्षण करके सीखना, परीक्षण करके सीखना, सामूहिक विधियों द्वारा सीखना, सम्मेलन व विचार गोष्ठ विधि, प्रोजेक्ट विधि।
- अधिगम क्रिया में सभी विधि का अपना अलग–अलग महत्व है।

बोध प्रश्न

- प्रमुख अधिगम विधियों के नाम लिखिए .....
  .....।
  प्रोजेक्ट विधि की विशेषताओं को अपने शब्दों में लिखिए। .....
  .....
  .....।

अधिगम के नियम (Law of Learning)

मुख्य शिक्षण बिन्दु

- थार्नडाइक के सीखने के मुख्य एवं गौण नियम
- सीखने–सिखाने में इनका महत्व

पशु, पक्षी, पौधे, मानव–सभी प्रकृति के नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत करते हैं। इसी प्रकार सीखने के भी कुछ नियम हैं। सीखने की प्रक्रिया इन्हीं नियमों के अनुसार चलती है।

ई0एल0थार्नडाइक (E.L.Thorndike) ने सीखने के कुछ नियम बताएं हैं जिनको प्रयोग से अध्ययन–अध्यापन प्रक्रिया को और अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है। उन्होंने सीखने के तीन मुख्य नियम एवं पाँच गौण नियम प्रतिपादित किए हैं।

1. सीखने के मुख्य नियम (Primary Laws of Learning)

(i) तत्परता का नियम (Law of Readiness)

(ii) अभ्यास का नियम (Law of Exercise)

(iii) परिणाम का नियम (Law of Effect)/प्रभाव का नियम/सन्तोष का नियम (Law of Satisfaction)

(i) तत्परता का नियम– जब हम किसी कार्य को सीखने के लिए तैयार या तत्पर होते हैं, तो हम उसे शीघ्र सीख लेते हैं। किसी समस्या को हल करने के लिए प्रयत्नशील होना तत्परता कहलाती है। यदि बच्चे में गणित के प्रश्न हल करने की इच्छा है, तो तत्परता के कारण वह उनको अधिक शीघ्रता और कुशलता से करता है। काम करने में आनंद एवं संतोष का अनुभव करेगा। इसके विपरीत सीखने के लिए तैयार नहीं होने की स्थिति में बच्चे को सीखने की क्रिया से असन्तोष मिलता है और प्रायः वह खीज (Annoyance) उठता है।

(ii) अभ्यास का नियम–इस नियम का तात्पर्य–''अभ्यास कुशल बनाता है (Practice makes a man perfect) यदि हम किसी कार्य का अभ्यास करते हैं तो हम उसे सरलतापूर्वक करना सीख जाते हैं और उसमें कुशल हो जाते हैं। हम बिना अभ्यास किए साइकिल पर चढ़ने में या कोई खेल खेलनें में कुशल नहीं हो सकते हैं।

यदि हम किसी सीखे हुए कार्य का अभ्यास नहीं करते हैं, तो उसे हम भूल जाते हैं। अभ्यास से सीखना स्थायी होता है इसे थार्नडाइक ने उपयोग का नियम (Law of use) और बिना अभ्यास से ज्ञान विस्मृत हो जाता है, इसे अनुपयोग का नियम (Law of Disuse) कहा है।

(iii) प्रभाव का नियम–प्रायः हम उस कार्य को ज्यादा अच्छे से करना चाहते है जिसका परिणाम हमारे लिए हितकर होता है, जिससे हमें सुख एवं सन्तोष मिलता है। यदि हमें किसी कार्य को करने

या सीखने में कष्ट होता है तो हम उस क्रिया को नहीं दोहराते हैं। थार्नडाइक के अनुसार जिस कार्य से सन्तोष होता है उससे उद्दीपन अनुक्रिया सम्बन्ध दृढ़ होता है और जिस कार्य से असन्तोष होता है उससे यह सम्बन्ध कमजोर होता है।

इन्हें भी जानें

बच्चा न तो खाली घड़ा होता है, न ही गीली मिट्टी बच्चा एक पौधे के समान होता है जिसके लिए हमें वे सभी अनुभव रचने व संचित करने हैं, जिनकी मदद से वह स्वयं का विकास करने में सक्षम बन पाए।

2. सीखने के सहायक या गौण नियम (Secondary Laws of Learning)– थार्नडाइक ने सीखने के पाँच गौण नियमों का प्रतिपादन किया है, इन नियमों का महत्व मुख्य नियम से कम है, इसलिए ये गौण नियम है।

- मनोवृत्ति का नियम (Law of Disposition)
- बहु अनुक्रिया का नियम (Law of Multiple Response)
- आंशिक क्रिया का नियम (Law of Partial Activity)
- अनुरूपता का नियम (Law of Analogy)
- सम्बन्धित परिवर्तन का नियम (Law of Associative shifting)

(i) मनोवृत्ति का नियम–जिस कार्य के प्रति हमारी अभिवृत्ति या मनोवृत्ति रहती है उसी अनुपात में हम उसको सीखते हैं। अनुकूल मनोवृत्ति होने पर बालक शीघ्र सीखता है तथा प्रतिकूल मनोवृत्ति होने पर बालक के सीखने में बाधाएँ आती है।

(ii) बहु अनुक्रिया का नियम–इस नियम के अनुसार जब हम कोई नया कार्य करना सीखते हैं तब हम उसके प्रति विभिन्न प्रकार की अनुक्रियाएँ करते हैं, इनमें से कुछ अनुक्रियाएँ लक्ष्य प्राप्ति में सहायक नहीं होती हैं, उन्हें हम छोड़ देते हैं, और फिर भूल जाते हैं। हम उन्हीं अनुक्रियाओं का चयन करते हैं, जो लक्ष्य प्राप्ति में सहायक होती है, इसे ही सीखना कहते हैं।

कक्षा कक्ष परिस्थिति में इस नियम के अनुसार बच्चों को स्वयं करके सीखने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

(iii) आंशिक क्रिया का नियम–थार्नडाइक का मानना है कि यदि बच्चों के सामने किसी समस्या को छोटे–छोटे भागों में विभाजित कर प्रस्तुत किया जाए और एक–एक भाग का समाधान किया जाए तो बच्चे पूरी समस्या को शीघ्रता एवं सुगमता से समझकर सम्पूर्ण कार्य को पूरा कर सकते हैं।

शिक्षक को भी चाहिए कि वे बच्चों के समक्ष समस्या प्रस्तुत करते समय उनके विभिन्न अंगों के विषय में बताएं और उन्हें अलग–अलग हलकर सम्पूर्ण समस्या का समाधान करने के लिए प्रेरित करे। बच्चों को अंश से पूर्ण की ओर बढ़ने के अवसर प्रदान करना चाहिए।

(iv) अनुरूपता का नियम– जब व्यक्ति के सामने कोई नई समस्या आती है तो वह अपने पूर्व के अनुभवों एवं प्रयत्नों को स्मरण करता है और उनसे तुलना करता है कि उसके अनुसार क्रिया कर समस्या का समाधान खोजने का प्रयत्न करता है।

शिक्षक को चाहिए कि कक्षा कक्ष स्थिति में वे बच्चों को ऐसे अवसर प्रदान करें जिससे वे अपने पूर्व ज्ञान का स्मरण एवं प्रयोग कर सकें।

(v) सम्बन्धित परिवर्तन का नियम–इस नियम को साहचर्य परिवर्तन का नियम भी कहते हैं। इसके अनुसार कोई भी अनुक्रिया जिसे करने की क्षमता व्यक्ति में होती है, उसे एक नए उद्दीपन के द्वारा भी उत्पन्न की जा सकती है। इसमें क्रिया का स्वरूप वहीं रहता है पर परिस्थिति में परिवर्तन हो जाता है।

शिक्षक को कक्षा में अच्छी आदतों एवं सकारात्मक अभिरुचि को उत्पन्न करना चाहिए ताकि छात्र उनका उपयोग अन्य परिस्थितियों में भी कर सकें।

प्रशिक्षु हेतु

कक्षा–कक्ष में अध्ययन–अध्यापन के सफल संचालन हेतु आप बच्चों के सीखने के किन–किन नियमों का प्रयोग करते हैं ? और क्यों ?

.....

.....।

सीखने के नियमों का शैक्षिक महत्व (Educational Importance of Laws of Learning)

अधिगम प्रक्रिया में सीखने के नियमों का विशेष महत्व है। सीखने की तत्परता, सतत अभ्यास, संतोषप्रद परिणाम से इच्छित फल की प्राप्ति होती हैं। इसलिए शिक्षक को चाहिए कि वे कार्यक्रम निश्चित करते समय इस बात का ध्यान रखें कि वह बच्चों के लिए संतोषप्रद हो और उनमें तत्परता की स्थिति पैदा की जाय। ऐसा न होने से प्रयत्न व परिश्रम व्यर्थ होगा।

दस मिनट पूरे जोश व उत्साह के साथ प्रबल हार्दिक इच्छा से प्रत्येक सोपान पर सफलता की भावना से किया हुआ कार्य का मूल्य लापरवाही से एक घण्टा भर किये हुए कार्य के बराबर है।

विद्वानों ने सीखने की क्षमता को बढ़ावा देने के लिए सीखने के नियमों का शैक्षिक महत्व माना है जो निम्नवत है–

1. उद्देश्यों की स्पष्टता (Clarity of Aims) शिक्षा के क्षेत्र में ज्ञान का उद्देश्य निश्चित, स्पष्ट एवं जीवनपयोगी होना चाहिए। जब बच्चे उसे सीख लेगें तो स्वतः ही सीखने के क्षेत्र में अपने ध्यान को एकाग्र कर सकेंगे। वे सुख देने वाला कार्य, कष्ट देने वाले कार्य की अपेक्षा शीघ्र करते एवं सीखते हैं।

2. उपयुक्त ज्ञान एवं क्रिया का चयन (Selection of Action and Appropriate Knowledge)–बच्चे की शारीरिक एवं मानसिक क्षमता का मूल्यांकन करने के बाद ही सीखने वाले को उपयुक्त ज्ञान एवं क्रिया और विधि का चुनाव करना चाहिए। इससे उसे स्थानान्तरण एवं अभ्यास में सरलता होती है।

3. अभ्यास जागृत करना (To Awake Exercise)–शिक्षक को विषय अथवा पाठ बार–बार दोहराकर अभ्यास करना चाहिए। शिक्षक द्वारा छात्रों को यह बतलाना कि बार–बार अभ्यास करने से सीखा गया ज्ञान स्थाई रहता है तथा बिना अभ्यास के वह विस्मृत हो जाता है।

4. तत्परता जागृत करना (To Awake Readiness)– बच्चा/छात्र अपने कार्य को तभी सीख सकते है जब वह सीखने के लिए तैयार होगें। तत्परता बच्चों की रुचि, उत्साह, शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य आदि पर निर्भर करता है। अतः शिक्षक को चाहिए कि वह बच्चों को सिखाने से पहले तैयार कर लें, ताकि वे ज्ञान को ठीक तरीके से ग्रहण कर सकें ।

5. स्वक्रिया पर बल (Stress on self Action)– अधिगमकर्ता को स्वयं हाथों से कार्य को करके सीखना चाहिए। इससे उसका अनुभव मजबूत एवं स्थायी होता है। इससे स्वनिर्भरता का विकास होता है।

6. अनुभव स्थानान्तरण (Experience Transfer)- सीखने के नियमों से यह स्पष्ट होता है कि मानवीय अनुभव का विशेष महत्व होता है। शिक्षक को चाहिए कि वे छात्रों को अधिक से अधिक अनुभव एकत्रित करने का अवसर दें। इसके पश्चात् वे छात्रों को अनुभवों की नवीन समस्या या कार्य के सीखने में उपयोगिता बताएँ। इस प्रकार बार– बार अभ्यास और प्रयोग से छात्र स्वतः ही अनुभवों का प्रयोग करना सीख जायेंगे

7. प्रेरकों का प्रयोग (Use of Motives) –सीखने के नियमों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि सीखने के लिए उचित वातावरण एवं प्रेरकों का प्रयोग आवश्यक है। जब हम बच्चों को पुरस्कार, प्रोत्साहन, प्रशंसा के द्वारा सीखने के लिए तैयार करते हैं तो वे सीखने के प्रति उत्साह एवं रुचि को प्रकट करते हैं। शिक्षकों को चाहिए कि वे पठन–पाठन के बीच–बीच में बच्चों को उत्साहित करते रहें, इससे वे प्रसन्न रहते हैं तथा शिक्षक को भी परिश्रम कम करना पड़ता है।

इस प्रकार थार्नडाइक के सीखने के नियम शिक्षा के क्षेत्र में लाभप्रद रहे हैं। सीखने के प्रति छात्रों को उत्साहित बनाना शिक्षक का प्रथम कर्तव्य होना चाहिए।

पुनरावृत्ति बिन्दु

- थार्नडाइक द्वारा प्रतिपादित सीखने के दो महत्वपूर्ण नियम बताए गए है जिसके प्रयोग से अधिगम अधिक प्रभावशाली होता है।
- सीखने के मुख्य नियम– 1. तत्परता का नियम 2. अभ्यास का नियम 3. परिणाम का नियम।
- सीखने के गौण नियम– 1. मनोवृत्ति का नियम 2. बहुअप्रतिक्रिया का नियम 3. आंशिक क्रिया का नियम 4. अनुरूपता का नियम 5. सम्बन्धित परिवर्तन का नियम।
- सीखने के नियमों का प्रयोग कर शिक्षक छात्रों में अधिगम के प्रति रुचि, उत्साह एवं संतोष विकसित कर सकते हैं।

मुल्यांकन

बहुविकल्पीय

1. सीखना व्यवहार में उत्तरोत्तर सामंजस्य की एक प्रक्रिया है। यह कथन है

(अ) स्किनर का (ब) थार्नडाइक का (स) वुडवर्थ का (द) कोहलर का।

2. योजना विधि के जन्मदाता है–

(अ) फ्रावेल (ब) जॉन डीबी (स) थार्नडाइक (द) स्किनर ।

3. सीखने के गौण नियमों की संख्या है–

(अ) 4 (चार) (ब) 5 (पांच) (स) 6 (छः) (द) 7 (सात)

2. अतिलघु उत्तरीय

(i) बालक का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य अधिगम को कैसे प्रभावित करता है ?

(ii) अनुकरण द्वारा सीखने का क्या तात्पर्य है ?

3. लघु उत्तरीय

(i) थार्नडाइक के द्वारा प्रतिपादित सीखने के प्रमुख नियमों को अपने शब्दों में समझाए।

(ii) परीक्षण करके सीखने का तात्पर्य लिखिए।

4. दीर्घ उत्तरीय

- शिक्षण अधिगम को प्रभावित करने वाले बच्चों एवं शिक्षकों से सम्बन्धित कारकों को अपने शब्दों में समझाए।
- अधिगम के नियमों का शिक्षा में क्या महत्व है ? उल्लेख करें।

प्रशिक्षु हेतु

कक्षा–शिक्षण में विषय सामग्री को प्रभावी अधिगम बनाने के लिए आप कौन–कौन से तौर तरीके अपनाएंगें, सूची तैयार करें।

सन्दर्भ सहित्य

(i) डॉ0 राकेश कुमार शर्मा { अधिगमकर्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया डॉ0 मनीषा जोशी }

(ii) पी0डी0 पाठक –शिक्षा मनोविज्ञान

अधिगम के प्रमुख सिद्धान्त व कक्षा शिक्षण में इनकी व्यावहारिक उपयोगिता

विभिन्न अवस्थाओं में विकास

- थार्नडाइक का प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त
- पैवलोव का सम्बद्ध प्रतिक्रिया का सिद्धान्त
- स्किनर का क्रिया प्रसूत अधिगम सिद्धान्त
- कोहलर का सूझ या अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त
- पियाजे का सिद्धान्त
- व्योगास्की का सिद्धान्त
- ब्रूनर का सिद्धान्त

व्यक्ति अपने जीवन में कई विधियों से सीखता है। मनोवैज्ञानिकों ने इसे कई प्रकार से विभाजित किया। हिलगार्ड ने अपनी पुस्तक में 10 से भी अधिक सीखने के सिद्धान्तों का वर्णन किया। इस सम्बन्ध में यह निश्चय करना कठिन है कि कौन सा सिद्धान्त ठीक है और कौन सा गलत।

सिद्धान्त न तो ठीक होते हैं न गलत। वे विशेष कार्यों के लिए कम या अधिक लाभप्रद होते हैं।

सीखने या अधिगम के कुछ मुख्य सिद्धान्त हैं –

1. थार्नडाइक का सीखने का सिद्धान्त (प्रयत्न या भूल)– इस 'प्रयास व त्रुटि' का सिद्धान्त भी कहते हैं। ई0एल0 थार्नडाइक (E.L.Thorndike) ने प्रयत्न व भूल के इस सिद्धान्त के बारे में बताते हुए कहा, कि जब व्यक्ति कोई कार्य सीखता है, तब उसके सामने एक विशेष स्थिति या उद्दीपक (Stimulus) होता है, जो उसे विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया करने के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार एक विशिष्ट उद्दीपक का एक विशिष्ट अनुक्रिया (response) से सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, तो उसे उद्दीपक अनुक्रिया सम्बन्ध कहते हैं।

थार्नडाइक का प्रयोग–थार्नडाइक एक पशु मनोवैज्ञानिक थे, इन्होंने बिल्ली, चूहे, मुर्गी आदि पर प्रयोग करके यह निष्कर्ष निकाला कि पशु–पक्षी व बच्चे प्रयत्न व भूल द्वारा सीखते हैं। अपने एक प्रयोग में इन्होंने एक भूखी बिल्ली को पिंजड़े में बन्द कर दिया और पिंजड़े के बाहर भोज्य सामग्री रख दी गई। बिल्ली के लिए भोजन उद्दीपक था। उद्दीपक के कारण उनमें प्रतिक्रिया आरम्भ हुई। बिल्ली ने बाहर निकलकर भोजन प्राप्त करने के लिए कई प्रयत्न किये और पिंजड़े के चारों ओर घूमकर कई पंजे मारे और प्रयत्न करते–करते अचानक उस तार को खींच लिया। जिससे पिंजड़े का दरवाजा खुलता था। दोबारा फिर बन्द करने पर बाहर उसे आने के लिए पहले से कम समय में सफलता मिल गई। तीसरे और चौथे प्रयास में और भी कम प्रयत्नों में सफलता मिल गई और एक परिस्थिति आई, जब एक बार में ही वो दरवाजा खोलकर बाहर आने लगी।

इसी प्रकार मैक्डूगल मनोवैज्ञानिक ने भी कई प्रयोग किया और यह सिद्ध कर दिया, कि पशु या मनुष्य जितनी बार प्रयत्न करता है, उतनी ही उसकी भूले कम होती जाती है और वह सफल क्रिया करना सीख लेता है।

प्रयास व त्रुटि का शिक्षा में महत्व–

- इस विधि से सीखने से सीखने की क्रिया सरल हो जाती है।
- यह सिद्धान्त करके सीखने पर बल देता है, जो कि आधुनिक समय में बहुत उपयोगी है।
- यह सिद्धान्त बड़े तथा मन्द बुद्धि बालकों के लिए बहुत उपयोगी हैं।
- भाषा में शुद्ध उच्चारण वह इसी विधि से सीखता है।
- इस विधि से अनुभव से लाभ उठाने की क्षमता का विकास करता है।
- इस सिद्धान्त से धैर्य व परिश्रम के गुणों का विकास होता है।
- चलना, साइकिल चलाना, गणित के प्रश्न हल करना, कलाकृतियां बनाना आदि सभी में इस सिद्धान्त का विशेष महत्व है।

  हम अपने दैनिक जीवन के कार्यों में इस सिद्धान्त का बहुत अधिक प्रयोग करते हैं।

2. पैवलव का सम्बद्ध प्रतिक्रिया का सिद्धान्त– अधिगम के इस सिद्धान्त का प्रतिपादन रूसी मनोवैज्ञानिक आई पैवलव (I. Pavlov) ने किया। इन्होंने सबसे पहले उद्दीपन और अनुक्रिया के सम्बन्ध को अनुबन्ध द्वारा व्यक्त किया।

पैवलव का प्रयोग – पैवलव ने पशुओं पर कई प्रयोग किये। इनका प्रसिद्ध प्रयोग कुत्ते पर किया गया। कुत्ते को एक निश्चित समय पर भोजन दिया जाता था। भोजन देखते ही उसकी लार टपकने लगती थी। कुछ दिनों के बाद भोजन देने से पहले घण्टी बजाई जाने लगी। उन्होंने स्वाभाविक उद्दीपन भोजन को घण्टी बजने के कृत्रिम उद्दीपन से जोड़ दिया, जिसके फलस्वरूप कुत्ता लार टपकाता था। इसके बाद उसने कुत्ते को भोजन न देकर केवल घण्टी बजाई। घण्टी की आवाज सुनते ही बिना भोजन देखे कुत्ते ने स्वाभाविक प्रतिक्रिया (लार बहना) की। इस प्रकार अस्वाभाविक या कृत्रिम उद्दीपन (घण्टी) के प्रति भी स्वाभाविक प्रतिक्रिया लार बहने में परस्पर सम्बन्ध स्थापित हो गया। ये सम्बद्ध प्रतिक्रिया कहलाती है।

भोजन (स्वाभाविक उद्दीपन)	– लार निकलना (स्वाभाविक प्रतिक्रिया)
भोजन (स्वाभाविक उद्दीपन) + घण्टी की आवाज (कृत्रिम उद्दीपन)	– लार निकलना (स्वाभाविक प्रतिक्रिया)
घण्टी की आवाज (कृत्रिम उद्दीपन)	– लार निकलना (स्वाभाविक प्रतिक्रिया)

सम्बद्ध प्रतिक्रिया सिद्धान्त का शिक्षा में महत्व –

- यह सीखने की स्वाभाविक विधि है।
- इसकी सहायता से बुरी आदतों और भय सम्बन्धी रोगो का उपचार कर सकते हैं।
- इससे अच्छे आचरण व अनुशासन की भावना का विकास किया जा सकता है।
- अनुकूल कार्य करवाने में इस सिद्धान्त का प्रयोग करना चाहिये।
- यह सिद्धान्त बालको के सामाजीकरण करने व वातावरण से सांमजस्य स्थापित करवाने में सहायक।
- यह सिद्धान्त उन विषयों की शिक्षा में उपयोगी है जिनमें चिन्तन की आवश्यकता होती है। जैसे सुलेख, अक्षर विन्यास आदि।

इस प्रकार सम्बद्ध–प्रतिक्रिया के सिद्धान्त को ध्यान में रखकर अध्यापक शिक्षण कार्य करें, तो अपने विषयगत कठिनाइयों को दूर कर सकेंगे।

3. स्किनर का क्रिया प्रसूत सिद्धान्त– बी0एफ0 स्किनर ने अधिगम के क्षेत्र में अनेक प्रयोग करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि अभिप्रेरण से उत्पन्न क्रियाशीलन ही सीखने के लिए उत्तरदायी है। उन्होने 2 प्रकार की क्रियाओं पर प्रकाश डाला– क्रिया प्रसूत व उद्दीपन प्रसूत। जो क्रियाएं उद्दीपन के द्वारा होती है वे उद्दीपन आधारित होती है। क्रिया प्रसूत का सम्बन्ध किसी ज्ञात उद्दीपन से न होकर उत्तेजना से होता है।

स्किनर ने अपना प्रयोग चूहों पर किया। इससे लीवर वाला वाक्स (स्किनर बाक्स) बनवाया। लीवर पर चूहे का पैर पड़ते ही खट की आवाज होती थी। इस ध्वनि को सुन चूहा आगे बढ़ता और उसे प्याले में भोजन मिला। यह भोजन चूहे के लिए प्रबलन का कार्य करता। चूहा भूखा होने पर प्रणोदित होता और लीवर को दबाता।

इन प्रयोगों में जब प्राणी स्वयं कोई वांछित व्यवहार करता है, तो व्यवहार के परिणाम स्वरूप उसे पुरस्कार प्राप्त होता है। अन्य व्यवहारों के करने पर उसे सफलता प्राप्त नही होती । वह पुरस्कृत व्यवहार आसानी से सीख लेता है।

सभी व्यवहारों में से वांछित व्यवहार का चयन ही सीखना है।

निष्कर्ष यह है, कि यदि क्रिया के बाद कोई बल प्रदान करने वाला उद्दीपन मिलता है, तो उस क्रिया की शक्ति में वृद्धि होती है। स्किनर के मत में प्रत्येक पुनर्बलन अनुक्रिया को करने के लिए प्रेरित करता है।

क्रिया प्रसूत अनुबन्धन का शिक्षा में महत्व (Importance of Operant Conditioning in Education)

- इसका प्रयोग बालकों के शब्द भण्डार में वृद्धि के लिए किया जाता है।

- शिक्षक इस सिद्धान्त के द्वारा सीखे जाने व्यवहार को स्वरूप प्रदान करता है, वह उद्दीपन पर नियन्त्रण करके वांछित व्यवहार का सृजन कर सकते हैं।
- इस सिद्धान्त में सीखी जाने वाली क्रिया को छोटे–छोटे पदों में विभाजित किया जाता है। शिक्षा में इस विधि का प्रयोग करके सीखने में गति और सफलता दोनों मिलती है।
- स्किनर का मत है, जब भी कार्य में सफलता मिलती है, तो सन्तोष प्राप्त होता है। यह संतोष क्रिया को बल प्रदान करता है।
- इसमें पुनर्बलन को बल मिलता है। अधिकाधिक अभ्यास द्वारा क्रिया को बल मिलता है
- यह सिद्धान्त जटिल व्यवहार वाले तथा मानसिक रोगियों को वांछित व्यवहार के सीखने में विशेष रूप से सहायक होता है।

दैनिक व्यवहार में हम इस सिद्धान्त का बहुत प्रयोग करते हैं।

4. सूझ या अन्तर्दृष्टि का सिद्धान्त (Insight Theory)- व्यक्ति कुछ कार्यों को करके सीखता है और कुछ कार्यों को दूसरों को करते देखकर सीखता है। परन्तु कुछ कार्य हम बिना बताये अपने आप ही सीख लेते हैं। इस प्रकार के सीखने को सूझ द्वारा सीखना कहते हैं।

गुड महोदय– *सूझ, वास्तविक स्थिति का आकस्मिक और तत्कालिक ज्ञान है।*

सूझ के इस सिद्धान्त के प्रतिपादक जर्मनी के गेस्टाल्टवादी है। इसलिए कोफ्का, कोहलर, वरदाईमर के इस सिद्धानत को 'गेस्टाल्टवादी सिद्धान्त' भी कहते हैं।

कोहलर के अनुसार किसी समस्या के आने पर व्यक्ति को अपनी मानसिक शक्ति द्वारा पूर्ण परिस्थिति का बोध हो जाता है और सूझ द्वारा अचानक उसका हल निकल आता है।

प्रयोगः– कोहलर महोदय ने सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए चिम्पैंजी और बन्दर आदि पर प्रयोग किये। कोहलर ने सुल्तान नामक एक चिम्पैंजी पर प्रयोग किया। चिम्पैंजी को उसने पिंजड़े में बन्द कर दिया और पिंजड़े की छत से केला लटका दिये। पिंजड़े के अन्दर दो छड़ियां एक छोटी व एक बड़ी रख दी गई, जो एक दूसरे में जोड़ी जा सकती थी। चिम्पैंजी ने बारी बारी से छड़ियों द्वारा केले को गिराने का प्रयास किया। परन्तु असफल रहा और निराश होकर बैठ गया। परन्तु केलों को प्राप्त करने की समस्व्या मन में बनी रही। फिर वो छड़ियों से खेलने लगा, अचानक छडियां एक दूसरे में घुस गई और जुड़ते ही उसमें सूझ उत्पन्न हो गई और दोनो छड़ियां जोड़कर केलों को गिराने में सफल हो गया। दूसरी बार वैसी ही समस्या आने पर एक ही बार में हल निकालने में सफल हो गया।

विशेषताएं– सूझ अचानक पैदा होती हैं।

- सीखने की प्रक्रिया संज्ञानात्मक होती है।

- सीखने की प्रकृति लगभग स्थायी होती है।
- सूझ के लिए समस्यात्मक परिस्थिति का होना अनिवार्य है।
- सूझ प्राणी के लक्ष्य और समाधान के बीच एक स्पष्ट सम्बन्ध की सूचक होती है।
- सूझ में समस्या का समाधान स्वतः मानसिक चिन्तन करने से मिल जाता है।

सूझ या अन्तर्दृष्टि का शिक्षा में महत्व

- यह सिद्धान्त रचनात्मक कार्यों के लिए उपयोगी है।
- इस सिद्धान्त से तर्क, कल्पना व चिन्तन शक्ति का विकास होता है।
- विज्ञान, गणित जैसे विषयों के शिक्षण में यह बहुत उपयोगी है।
- साहित्य, संगीत कला आदि की शिक्षा के लिए बहुत उपयोगी है।
- यह सिद्धान्त बालकों को स्वयं खोज करके ज्ञान अर्जित करने के लिए प्रेरित करता है।
- विद्यालय में बालक के समस्या समाधान पर आधारित अधिकांश सीखने में यह विधि उपयेागी है।

अन्तर्दृष्टि का सीखने में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। परन्तु यह सूझ उच्चकोटि के पशुओं व मनुष्यों में ही सम्भव होती है क्योंकि सूझ द्वारा सीखने में बुद्धि का प्रयोग करना पडता है। सामान्यतया कोई भी समस्या आने पर उसका समाधान हम सूझ द्वारा ही करते हैं।

5. पियाजे का सिद्धान्त (Theory of Piaget)

स्विस मनोवैज्ञानिक पियाजे (Piaget) का कहना है, कि जैसे–जैसे बच्चे की आयु बढ़ती है, उसका कार्य क्षेत्र बढ़ता जाता है। वैसे–वैसे उसकी बुद्धि का विकास भी होता जाता है। उन्होंने स्पष्ट किया, कि पहले बच्चा सरल प्रत्ययों के माध्यम से सीखता है। परन्तु जैसे–जैसे बच्चा बड़ा होता है। कठिन से कठिनतम प्रत्ययों को ग्रहण करने लगता है। हमरे लिए उपयुक्त वातावरण की आवश्यकता है।

इन्होनें कहा, सीखना कोई यांत्रिक क्रिया नही है बल्कि एक बौद्धिक प्रक्रिया है, एक सम्प्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया है। और यह सम्प्रत्यय निर्माण बालक की आयु के अनुसार होता रहता है।

पियाजे ने अपने सिद्धान्त में निम्नलिखित पदों पर विशेष बल दिया है–

(1) अनुकूलन (Adaptation)

(2) साम्यधारणा (Equilibration)

(3) संरक्षण (Conservation)

(4) संज्ञानात्मक संरचना (cognitive structure)

(5) मानसिक क्रिया (Mental Operation)

(6) स्कीम्स (Schemes)

(7) स्कीमा (Schema)

(8) विकेन्द्रण (Decentering)

इन्होंने संज्ञानात्मक विकास को मुख्य रूप से चार कालों में विभाजित किया–

(1) संवेदीपेशीय अवस्था

(i) सहज क्रियाओं की अवस्था

(ii) प्रमुख वृत्तीय अनुक्रियाओं की अवस्था

(iii) गौण वृत्तीय अनुक्रियाओं की अवस्था

(iv) गौण स्कीमेटा के समन्वय की अवस्था

(v) तृतीय वृत्तीय अनुक्रियाओं की अवस्था

(vi) मानसिक संयोग द्वारा नये साधनों के खोज की अवस्था

(2) प्राक्संक्रित्यामक अवस्था

(i) प्राक्सम्प्रत्यात्मक अवधि

(ii) अन्तदर्शी अवस्था

(3) मूर्तसंक्रिया की अवस्था

(4) औपचारिक संक्रिया की अवस्था

नोट *–इस सभी का वर्णन विभिन्न अवस्थाओं में संज्ञानात्मक विकास में दिया गया है।*

पियाजे के सीखने के सिद्धान्त की विशेषताएं (Characterstics of Piaget)

- सीखना एक क्रमिक एवं आरोही प्रक्रिया है।
- पियाजे के अनुसार सीखने का पर्यावरण और क्रिया मूल आवश्यकताएं हैं।
- बालक के अमूर्त चिन्तन पर उसकी शिक्षा का प्रभाव पड़ता है। निम्नस्तर पर अमूर्त चिन्तन कम व उच्च शिक्षा स्तर पर अमूर्त चिन्तन अधिक होता है।
- पियाजे के अनुसार औपचारिक संक्रिया अवस्था (Formal operational stage) के बाद बालक की सम्पूर्ण बौद्धिक शक्ति का विकास हो जाता है और अपनी बौद्धिक क्षमताओं के प्रयोग से समस्या का समाधान क्रमबद्ध व तार्किक ढंग से कर सकता है।

- पियाजे के अनुसार बच्चों में चिन्तन एवं खोज करने की शक्ति उसकी जैविक परिपक्वता, अनुभव एवं इन दोनों की अन्तर्किया पर निर्भर करता है।

पियाजे के सिद्धान्त का शिक्षा में उपयोग (Implications of Piaget's Theory in Education)

- इस सिद्धान्त ने बालकों को स्वक्रिया द्वारा सीखने पर बल दिया।
- पियाजे ने अनुकरण व खेल को महत्व दिया और शिक्षक को इन विधियों से पढ़ाना चाहिये।
- सीखने में प्रगति न करने वालों को दण्ड नही देना चाहिये।
- पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास के अनुसार विभिन्न श्रेणियों को विभाजित किया। उसी के अनुसार किसी भी आयु के लिए पाठ्यक्रम निर्माण करना चाहिये।
- पियाजे ने बुद्धि का मापन उसके व्यावहारिक उपयोग (वातावरण के साथ अन्तर्क्रिया) की क्षमता के रूप में लिया जाता है। बुद्धि परीक्षण निर्माण में व्यावहारिक रूप में प्रयोग से सम्बन्धित क्रियाओं का उपयोग करना चाहिये।
- पियाजे के सिद्धान्त के अनुसार चालक (Drives) और अभिप्रेरणा (Motivation) अधिगम एवं विकास के लिए आवश्यक है। अतः शिक्षक को शिक्षण अधिगम में इसका प्रयोग करना चाहिये।
- पियाजे के अनुसार सीखना बालक के स्वयं और उसके पर्यावरण से अन्तर्क्रिया के फलस्वरूप होता है, अतः शिक्षकों एवं अभिभावकों को बालकों के लिए उचित मार्ग दर्शन करना चाहिये।

इस प्रकार पियाजे के सिद्धान्त का शिक्षा में बहुत महत्व है।

6. व्योगास्की का सिद्धान्त (Principle of Vygotsky) Lev Vygotsky (1896-1934) ने संज्ञानात्मक विकास में सामाजिक अन्तर्क्रिया पर अधिक बल दिया और कहा, कि समुदाय का सीखने में बहुत महत्व है। सामाजिक सीखने (Social Learning) की प्रक्रिया विकास के पहले ही आरम्भ हो जाती है। व्यक्तिगत विकास को भी सामाजिक विकास के बिना नहीं समझा जा सकता। व्यक्ति की उच्च मानसिक प्रक्रिया (Higher Mental Process) की उत्पत्ति (orgin) भी सामाजिक प्रक्रिया से होती है।

- संस्कृति संज्ञात्मक विकास को दिशा देती है।
- संज्ञानात्मक विकास में सामाजिक कारक का बहुत महत्व है।
- व्योगोस्की ने संज्ञानात्मक विकास (cognitive development) के लिए भाषा पर बल दिया। तर्क करना, चिन्तन करना आदि सभी सांस्कृतिक कारकों को मदद करते हैं।
- सीखने में शिक्षक का महत्वपूर्ण स्थान है।
- ज्ञान भी सामाजिक सन्दर्भ में होता है।

इन्होंने कहा कि–

- बच्चे ज्ञान का सृजन करते हैं।
- विकास को सामाजिक सन्दर्भ से अलग नहीं कर सकते।

- सीखना विकास की ओर निर्देशित कर सकता है। सामाजिक वातावरण सीखने में सहायता करता है।
- बच्चे की भाषा, दक्षताएं व अनुभव सब व्यक्ति की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से प्रभावित होती है।

इस प्रकार व्योगास्की महोदय ने सीखने में सामाजिक व सांस्कृतिक वातावरण को बहुत महत्व दिया।

सोंचे और बतायें, कि सामाजिक सीखने के लिए आप कक्षा में कौन–कौन सी गतिविधियां करवा सकते हैं ? सूचीबद्ध कीजिये– .....
.....।

7. ब्रूनर (Bruner) का सिद्धान्त (Bruner's Cognitive Development Theory)

ब्रूनर ने मुख्य रूप से दो बातों पर ध्यान दिया। पहला, यह कि शिशु अपनी अनुभूतियों को मानसिक रूप से किस प्रकार व्यक्त करता है और दूसरा यह कि शैशवावस्था और बाल्यावस्था में बालक चिन्तन कैसे करता है।

ब्रूनर के अनुसार शिशु अपनी अनुभूतियों का मानसिक रूप से तीन तरीकों से अभिव्यक्त करते हैं–

(1) सक्रियता विधि (Enactive Mode)–इस विधि में शिशु अपनी अनुभूतियों को शब्दहीन क्रियाओं के द्वारा व्यक्त करता है। जैसे –भूख लगने पर रोना, हाथ–पैर हिलाना आदि इन क्रियाओं द्वारा बालक वाह्य वातावरण से सम्बन्ध स्थापित करता है।

(2) दृश्य प्रतिमा विधि (Iconic Mode)–इस विधि में बालक अपनी अनुभूति को अपने मन में कुछ दृश्य प्रतिमांए (Visual images)–बनाकर प्रकट करता है। इस अवस्था में बच्चा प्रत्यक्षीकरण के माध्यम से सीखता है।

(3) सांकेतिक विधि (Symbolic Mode)–इस विधि में बालक अपनी अनुभूतियों को ध्वन्यात्मक संकेतो (भाषा) के माध्यम से व्यक्त करता है। इस अवस्था में बालक अपने अनुभवों को शब्दों में व्यक्त करता। इस प्रकार बालक प्रतीकों (Symbols) का उनके मूल विचारों से सम्बन्धित करने की योग्यता का विकास करता है।

इन्हें भी जाने–

ब्रूनर के अनुसार–जन्म से 18 माह तक सक्रियता विधि 18 माह से 24 माह तक दृश्य प्रतिमा विधि 7 वर्ष की आयु से आगे सांकेतिक विधि की प्रधानता रहती है।

ब्रूनर ने सीखने की प्रक्रिया व कक्षा शिक्षण का बड़ी बारीकी से अध्ययन किया व निम्नलिखित तथ्य पाये–

- सीखने सिखाने की प्रक्रिया में अन्तदर्शी चिन्तन अधिक उपयोगी है।
- हर विषय की संरचना होती है, उनके मूल सम्प्रत्यय, नियम व विधियां होती है, उसको सीखे बिना विषय का ज्ञान सम्भव नही।
- जो ज्ञान स्वयं खोज द्वारा प्राप्त किया जाता है, वो ही उसके लिए सार्थक व टिकाऊ होता है।
- ब्रूनर के अनुसार जो कुछ पढ़ाया सिखाया जाये उसका व्यक्ति व समाज दोनों से सम्बन्ध हो। इस प्रकार ब्रूनर ने दो प्रकार की सम्बद्धता पर बल दिया।
  (1) व्यक्तिगत सम्बद्धता (Personal Relevance)
  (2) सामाजिक सम्बद्धता (Social Relevance)
- ब्रूनर के अनुसार पाठ्यक्रम तैयार करके बच्चों को सीखने की लिए तात्पर करें।
- सीखने की परिस्थिति में बच्चे सक्रिय रूप से भाग लें।

ब्रूनर के सिद्धान्त की विशेषताएं (Characterstics of Bruner's Cognitive Development Theory)

1. ब्रूनर का सिद्धान्त बालक के पूर्व अनुभवों तथा नये विषय वस्तु में समन्वय के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने पर बल देता है।
2. विषय वस्तु की संरचना ऐसी हो, कि बच्चे सुगमता व सरलता से सीख सकें।
3. इस सिद्धान्त के अनुसार विषयवस्तु जो सिखाई जानी है, ऐसे अनुक्रम व बारम्बारता से प्रस्तुत की जाये, जिससे बच्चे तार्किक ढंग से एवं अपनी कठिनाई स्तर के अनुसार सीखते हैं।
4. यह सिद्धान्त सीखने में पुनर्बलन, पुरस्कार व दण्ड आदि पर बल देता है।
5. इस सिद्धान्त के अनुसार शिक्षा बालक में व्यक्तिगत व सामाजिक दोनो गुणों का विकास करती है।

ब्रूनर के सिद्धान्त की शिक्षा में उपयोगिता

(Implication of Bruner's Theory in Education)

1. ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास की विभिन्न अवस्थाओं के अनुसार पाठ्यक्रम का निर्माण करना चाहिए।
2. ब्रूनर ने मानसिक अवस्थाओं का वर्णन किया। इन अवस्थाओं के अनुसार शिक्षण विधियों व प्रविधियों का प्रयोग करना चाहिये।
3. इनकी अन्वेषण विधि द्वारा छात्रों में समस्या समाधान की क्षमता का विकास किया जा सकता है।

4. ब्रूनर ने सम्प्रत्यय को समझने पर बल दिया अतः शिक्षक को विषय ठीक से समझाने चाहिये। इसके ज्ञान से छात्र पर्यावरण को समझ कर उसका उपयोग कर सकता है।
5. इन्होंने वर्तमान अनुभवों को पूर्व ज्ञान एवं अनुभव से जोड़ने पर बल दिया। इससे छात्रों के ज्ञान को समृद्ध एवं स्थाई बनाया जा सकता है।
6. ब्रूनर की संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं के अनुसार शिक्षक, अपने नियोजन (Planning) क्रियान्वयन (Execution) एवं मूल्यांकन (Evaluation) प्रक्रिया में संशोधन कर बालकों के बौद्धिक विकास में सहायक हो सकते हैं।

इस प्रकार ब्रूनर का सिद्धान्त वर्तमान कक्षा शिक्षण के लिए बहुत उपयोगी है।

पुनरावृत्ति बिन्दु

- सिद्धान्त ज्ञान के क्षेत्र में पहुंचने का साधन है।
- सीखने के विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया।
- प्रयास एवं त्रुटि के सिद्धान्त के प्रतिपादक थार्नडाइक महोदय थे।
- सम्बद्ध प्रतिक्रिया का सिद्धान्त रूसी मनोवैज्ञानिक ई0एल0 पैवलव ने किया।
- सूझ के सिद्धान्त में सीखना अचानक होता है।
- पियाजे व ब्रूनर ने सीखने के संज्ञानात्मक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।
- व्योगास्की ने संज्ञानात्मक विकास में सामाजिक अन्तर्क्रिया पर बल दिया।
- क्रिया प्रसूत अनुबन्धन के प्रतिपादक स्किनर महोदय हैं।

मूल्यांकन

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. सीखने में सिद्धान्त कौन–कौन से है।
2. प्रयत्न व भूल के सिद्धान्त का प्रतिपादन किससे किया ?
3. आई पैवलव ने प्रयोग किया था–

   (अ) बिल्ली पर (ब) कुत्ते पर (स) चूहे पर (द) चिम्पैंजी पर
4. अधिगम के सूझ या अन्तर्दृष्ट के प्रतिपादक है–

(अ) हल (ब) कोहलर (स) थार्नडाइक (द) स्किनर

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

1. अन्तर्दृष्टि का सिद्धान्त क्या है ?

2. व्योगास्की ने अपने सिद्धान्त में किस पर अधिक बल दिया ?

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. पियाजे के सिद्धान्त की मुख्य क्या विशेषताएं हैं ?
2. स्किनर ने सीखने में किस बात पर अधिक बल दिया ?

दीर्घ लघुउत्तरीय प्रश्न

1. सूझ द्वारा सीखने का शिक्षा में क्या महत्व है इस पर अपने विचार व्यक्त करिये।
2. दैनिक जीवन में सम्बद्ध प्रतिक्रिया द्वारा सीखने की क्या उपयोगिता है ?

हम अपने दैनिक जीवन में प्रयत्न व भूल विधि द्वारा किन–किन अवसरों पर सीखते हैं इसकी सूची बनाइये –

.....

.....

.....।

सीखने के वक्र (Learning Curves)

हम अपने जीवन में नई बातें, नये कार्य व नये विषय सीखते हैं जैसे अंग्रेजी पढ़ना, कार चलाना, चित्र बनाना आदि। हमारी इन सबको सीखने की गति आरम्भ से अन्त तक एक सी नहीं होती, यह कभी तेज व कभी धीमी होती है। यदि हम सीखने की गति को एक ग्राफ पेपर पर अंकित करें, तो एक वक्र रेखा बन जायेगी, इसी को सीखने का वक्र (curve) कहते हैं। दूसरे शब्दों में सीखने का वक्र सीखने में होने वाली उन्नति या अवनति को व्यक्त करता है।

गेट्स व अन्य– *सीखने के वक्र अभ्यास द्वारा सीखने की मात्रा, गति और उन्नति की सीमा का ग्राफ पर प्रदर्शन करते हैं।*

सीखने के वक्र की विशेषताएं–

1. सीखने में उन्नति– सीखने के वक्र को हम मोटे तौर पर तीन अवस्थाओं में बांट सकते हैं–प्रारम्भिक, मध्य व अन्तिम। सीखने की गति समान नहीं होती अन्तिम अवस्था की तुलना में प्रारम्भिक अवस्था में उन्नति बहुत तीव्र होती है।
2. प्रारम्भिक अवस्था (Initial Stage)–प्रारम्भिक अवस्था में सीखने की गति में तीव्रता होती है, परन्तु यह सार्वभौम विशेषता नहीं है।
3. मध्य अवस्था (Middle Stage) जैसे–जैसे व्यक्ति अभ्यास करता जाता है, वैसे–वैसे वो सीखने में उन्नति करता जाता है। परन्तु उन्नति का रूप स्थायी नहीं होता, कभी–कभी उन्नति तीव्र होती है कभी कम।
4. अन्तिम अवस्था (Last Stage)–जैसे–जैसे सीखने की अन्तिम अवस्था आती है वैसे–वैसे सीखने की गति धीमी पड़ जाती है और एक अवस्था ऐसी आती है, जब व्यक्ति सीखने की सीमा पर पहुंच जाता है।
5. सीखने की गति अनेक बातों पर निर्भर करती है जैसे सीखने वाले की रुचि, प्रेरणा, जिज्ञासा, उत्साह, कार्य की सरलता या जटिलता।

सीखने में पठार (Plateaus in Learning)– जब हम कोई नई बात सीखते है, तो हम लगातार उन्नति नहीं करते। हमारी उन्नति कभी कम और कभी अधिक होती है। कुछ समय बाद ऐसा अवसर भी आता है, जब हमारी उन्नति बिल्कुल रुक जाती है। इस सपाट स्थल को सीखने में पठार कहते हैं।

पठार निम्नलिखित कारणों से आता है–

- प्रेरणा का अभाव–उचित प्रेरकों के अभाव में भी सीखने में पठार आ जाता है।
- रुचि में कमी होना–सीखते–सीखते यदि बालक की उस कार्य में रुचि कम हो जाती है तो सीखने में पठार आ जाता है।
- शारीरिक सीमा–बच्चे में उत्साह तो तथा उसे अच्छी से अच्छी पद्धति से सिखाया जाये, लेकिन वो अपनी शारीरिक सीमा के अनुकूल ही उन्नति करता है, किसी भी दशा में उसकी क्षमता में अधिक उन्नति नहीं हो सकती।
- सीखने की अनुचित विधियां– सीखने की अनुचित आदते भी पठार पैदा करती है जैस कलम को कस कर पकड़ना, उंगली पर गिनती करना आदि।
- कार्य की गहनता– प्रारम्भ में कोई क्रिया सरल होती है, बाद में क्रिया कठिन होती जाती है। इससे सीखने में गतिवरोध उत्पन्न होता है।
- पुरानी आदतों व नई सीखी आदतों में संघर्ष– किसी प्रकार के कौशलात्मक कार्य को सीखने में पुरानी आदतें नवीन आदतों में बाधा डालती है। जैसे टाइप करने में अक्षर अभ्यास के बाद शब्द अभ्यास में पुरानी आदत अक्षर अभ्यास बाधा पैदा करते हैं।
- प्राप्त ज्ञान को स्थायी बनाना– पठार प्रकृति द्वारा प्रदत्त वह साधन है, जिसके द्वारा प्राप्त ज्ञान को स्थायी बनाया जाता है व पठार आ जाता है।
- अन्य कारण जैसे थकान, निराशा, उदासीनता जिज्ञासा व उत्साह में कमी, अस्वस्थता दुखित वातावरण व पारिवारिक कठिनाइयां आदि

- सीखने में पठार .....
  .....।
- यहां पर चित्र बनाना है .....
  .....।

पठार को दूर करने के उपाय– शिक्षक को पठार को दूर करने के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिये–

- सीखने वाले को प्रेरणा देना।
- नवीन प्रणालियों का प्रयोग।
- कार्य के बीच–बीच में विश्राम देना।
- सीखने की उचित विधियों का प्रयोग।
- बच्चों के व्यक्तिगत भेदों पर ध्यान देकर उनकी क्षमता के अनुसार सीखने की सुविधा प्रदान करना।

- बच्चों का उत्साहवर्धन करना।
- सीखने का वातावरण इस प्रकार रखे कि वो सीखने की प्रक्रिया में यथासम्भव सहायता प्रदान करें।
- कभी–कभी बालक हतोत्साहित हो जाते हैं, ऐसी स्थिति में शिक्षकों को चाहिये कि वो समय–समय पर बच्चों का उचित मार्गदर्शन करें।

शिक्षक का यह कर्तव्य है कि वह पठार के कारणों का पता लगाये और उनको दूर करने का प्रयत्न करें ताकि सीखने की प्रक्रिया सफलतापूर्वक आगे बढ़े।

पुनरावृत्ति बिन्दु'

1. हम सीखने की गति को एक ग्राफ पेपर पर प्रदर्शित करते है, तो उसे सीखने का वक्र कहते हैं।
2. सीखते समय अचानक सीखने की गति का रूक जाना सीखने में पठार कहलाता है।
3. सीखने में पठार आने के कारण विभिन्न हो सकते हैं, जैसे रुचि व प्रेरणा में कभी, सीखने की अनुचित विधि, थकान आदि।

बोध प्रश्न–

1. सीखने में पठार आने का मुख्य कारण क्या है ?
2. पठार को दूर करने के क्या उपाय है ?

सीखने का स्थानान्तरण (Transfer of Learning)

मुख्य बिन्दु

- सीखने का स्थानान्तरण–अर्थ एवं प्रकार, सिद्धान्त
- सीखने सिखाने में स्थानान्तरण का महत्व

सीखने का स्थानान्तरण (Transfer of Learning) अर्थ–जब कोई एक सीखा हुआ कार्य दूसरे सीखने के कार्य को प्रभावित करता है, तो उसे सीखने का स्थानान्तरण कहते है। इस प्रकार का स्थानान्तरण सीखने की क्रिया को सरल बनाता है। जैसे हम विद्यालय में जोड़, घटाना, गुणा आदि सीखते है और उस ज्ञान का प्रयोग बाजार में चीजे खरीदने के समय करते हैं। दूसरी ओर जब पहली सीखी गई क्रिया दूसरे सीखने की क्रिया में बाधक बनती है, तो उसे विपरीत स्थानान्तरण कहते हैं।

बी0जे0–अण्डरवुड (B.J. Underwood) के अनुसार ''वर्तमान क्रियाओं पर पूर्व अनुभवों का प्रभाव ही अधिगम स्थानान्तरण है।''

क्रो एण्ड क्रो (Crow and Crow) के अनुसार ''जब शिक्षण के एक क्षेत्र में प्राप्त विचार, अनुभव के कार्य की आदत, ज्ञान निपुणता को दूसरी परिस्थिति में प्रयोग किया जाता है, तो वह शिक्षण का स्थानान्तरण कहलाता है।''

ई0आर0 हिलगार्ड (E.R. Hitguard) के अनुसार ''अधिगम स्थानान्तरण में एक क्रिया का प्रभाव दूसरी क्रिया पर पड़ता है।''

स्थानान्तरण के प्रकार (Kinds of Transfer)

अधिगम स्थानान्तरण मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं–

सकारात्मक स्थानान्तरण (Positive Transfer)– जब पूर्व ज्ञान, अनुभव या प्रशिक्षण नये प्रकार के सीखने में सहायता देता है, तो उसे सकारात्मक स्थानान्तरण कहते हैं, जैसे–जो व्यक्ति स्कूटर चलाना जानता है उसे मोटर साइकिल चलाने में कोई कठिनाई नहीं होती है।

नकारात्मक स्थानान्तरण (Negative Transfer)–जब पूर्व ज्ञान, अनुभव या प्रशिक्षण नये प्रकार के सीखने में कठिनाई उत्पन्न करते हैं, तो उसे नकारात्मक स्थानान्तरण कहते हैं, जैसे –साईकिल के मेकेनिक को स्कूटर की मरम्मत करने में कठिनाई का अनुभव होता है।

अधिगम स्थानान्तरण के सिद्धान्त (Theories of Tansfer Learning)

अधिगम स्थानान्तरण के कुछ सिद्धान्त निम्नवत है :–

1. **मानसिक शक्तियों का सिद्धान्त**– अधिगम स्थानान्तरण का यह सबसे पुराना सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार मन की शक्तियों (तर्क, ध्यान, स्मृति, कल्पना आदि) को शिक्षण के द्वारा विकसित किया जा सकता है। इस विकास का प्रभाव आगे सभी कार्यों पर पड़ता है।

2. **समान तत्वों का सिद्धान्त**–इस सिद्धान्त के प्रतिपादक थार्नडाइक है। इस सिद्धान्त के अनुसार, एक कार्य का दूसरे कार्य पर कितना स्थानान्तरण होगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि दोनों कार्यों में साहचर्यात्मक तत्वों की कितनी समानता है। दो कार्यों में जितनी अधिक समानता होगी, उतना ही अधिक वे एक–दूसरे के अध्ययन में सहायक होंगे।

जैसे–भूगोल का ज्ञान, इतिहास के अध्ययन में सहायता दे सकता है, परन्तु कला एवं विज्ञान के अध्ययन में नहीं।

3. **सामान्यीकरण का सिद्धान्त**– इस सिद्धान्त के अनुसार यदि एक व्यक्ति अपने किसी कार्य, ज्ञान या अनुभव से कोई सामान्य नियम निकाल लेता है, तो वही दूसरी परिस्थिति में उनका प्रयोग कर सकता है, जैसे यदि शिक्षक के बाल–मनोविज्ञान का ज्ञान है, तो वह अपने इस ज्ञान का प्रयोग कक्षा की समस्याओं का समाधान करने और सफलतापूर्वक पढ़ाने के लिए कर सकता है।

4. **सामान्य से विशिष्ट तत्वों का सिद्धान्त**–इस सिद्धान्त के प्रतिपादक स्पीयरमैन (Spearman) है। इनके अनुसार मुख्य दो प्रकार की बुद्धि होती है–सामान्य एवं विशिष्ट योग्यता। स्थानान्तरण केवल सामान्य योग्यता का होता है जैसे यदि कोई बच्चा भूगोल, गणित, विज्ञान आदि किसी विषय का अध्ययन करता है तो वह केवल अपनी सामान्य योग्यता का ही स्थानान्तरण करता है। विशिष्ट योग्यता का स्थानान्तरण नहीं होता हैं

अधिगम में स्थानान्तरण का महत्व (Importance of Transfer of Learning)

सीखने में स्थानान्तरण का अधिक महत्व है। कुछ मनोवैज्ञानिक मानते है कि मन अनेक योग्यताओं का केन्द्र है किसी एक योग्यता का अभ्यास करने पर समस्त योग्यताओं का विकास हो जाता है। उनके अनुसार विद्यालय में विषयों का अध्ययन चरित्र और अनुशासन का विकास करता है।

- स्थानान्तरण के द्वारा किसी कार्य का अभ्यास करने से प्राप्त होने वाले प्रशिक्षण का दूसरी परिस्थिति में प्रयोग किया जाता है। जैसे–विद्यालय में सीखे जोड़, घटाना, गुणा आदि का प्रयोग बाजार में चीजों को खरीदते समय करते है।
- दो विषयों में समानता होने पर स्थानान्तरण अत्यधिक होता है, जैसे –गणित का ज्ञान भौतिकशास्त्र के अध्ययन में अत्यधिक सहायक होता है। यदि दो विषय बिल्कुल भिन्न है तो वहां

स्थानान्तरण बिल्कुल ही नहीं होगा जैसे–इंजीनियरिंग का ज्ञान दर्शनशास्त्र में सहायक नहीं होता इस प्रकार निशेधात्मक स्थानान्तरण से सदैव बचना चाहिए। ये विकास में बाधक होते हैं।

- स्थानान्तरण से मानसिक शक्तियों का विकास होता है, जिसका प्रयोग हम अन्य कार्यों में करते हैं।
- शिक्षक अधिगम के अन्तरण के द्वारा ही बच्चे के भविष्य का निर्माण होता है।

सोचें और लिखें–

विचार करें और अनुभव के आधार पर यह बतायें, जब किसी सीखी गई योग्यता का प्रयोग आपने अन्य परिस्थिति में किया हो।

पुनरावृत्ति बिन्दु

- सीखने का स्थानान्तण अधिगम की क्रिया को सरल बनाता है।
- स्थानान्तरण –सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार का होता है।
- स्थानान्तरण से मानसिक शक्तियों का विकास होता है, जिसका प्रयोग हम अन्य कार्यों में करते हैं।

सारांश

जब कोई एक सीखा हुआ कार्य दूसरे सीखने के कार्य को प्रमाणित करता है तो उसे अभिगम स्थानान्तरण कहते हैं। यह स्थानान्तरण सकारात्क एवं नकारात्मक दोनों प्रकार का हो सकता है। जब कोई सीखा हुआ ज्ञान नवीन ज्ञान को सीखने के सहायक हो तो उसे सकारात्मक स्थानान्तरण कहते हैं जैसे विद्यालय में सीखा हुआ जोड़ घटाना बाजार में समान खरीदने में सहायक होता है। ठीक उसी प्रकार जब सीखा हुआ ज्ञान नवीन ज्ञान के सीखने में बाधक होता है तो उसे नकारात्मक स्थानान्तरण कहते हैं।

प्रायः हमारे जीवन में अधिगम का स्थानान्तरण होता है जिसके कारण हम नई विषय सामग्री को आसानी से समझ लेते है, जिससे समय एवं श्रम की भी बचत होती है। अधिगम के स्थानान्तरण से मानसिक शक्तियों का विकास होता है। जिसे हम अन्य दूसरे कार्यों में लगाते हैं।

मूल्यांकन

बहुविकल्पीय प्रश्न सही विकल्प पर सही का निशान लगाइये–

(1) अधिगम स्थानान्तरण के सिद्धान्त है –

(क) मानसिक शक्तियों का सिद्धान्त

(ख) समान तत्वों का सिद्धान्त

(ग) सामान्यीकरण का सिद्धान्त

(घ) उपर्युक्त सभी

(2) स्थानान्तरण के प्रकार हैं–

(क) दो (2) (ख) तीन (3) (ग) चार (4) (घ) पांच (5)

अतिलघु उत्तरीय

(1) सकारात्मक स्थानान्तरण क्या है ?

(2) अधिगम स्थानान्तरण की कोई एक परिभाषा लिखिए।

लघुउत्तरीय

(1) अधिगम स्थानान्तरण के सामान्यीकरण का सिद्धान्त अपने शब्दों में लिखिए।

(2) नाकारात्मक स्थानान्तरण सीखने को किस प्रकार प्रभावित करता है। उदाहरण द्वारा समझाएं।

दीर्घउत्तरीय

(1) अधिगम स्थानान्तरण के किन्हीं दो सिद्धातों का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।

(2) सीखने में स्थानान्तरण का क्या महत्व है, अपने अनुभव के आधार पर उल्लेख करिए।

अभिप्रेरणा –अर्थ प्रकार एवं महत्व

प्रमुख शिक्षण बिन्दु

- अभिप्रेरणा का अर्थ एवं परिभाषाएं
- अभिप्रेरणा के प्रकार
- शिक्षा में अभिप्रेरणा का महत्व
- अभिप्रेरणा की विधियाँ

अभिप्रेरणा का अर्थ (Meaning of Motivation)– व्यवहार को समझने के लिए अभिप्रेरणा प्रत्यय का अध्ययन अति आवश्यक है। अभिप्रेरणा शब्द का प्रचलन अंग्रेजी भाषा के 'मोटीवेशन' (Motivation) के समानअर्थी के रूप में होता है। मोटीवेशन शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के मोटम (Motum) धातु से हुई है, जिसका अर्थ मूव (Move) या इन्साइट टू ऐक्सन (Insight to Action) होता है।

अतः प्रेरणा एक संक्रिया है, जो जीव को क्रिया के प्रति उत्तेजित करती है तथा सक्रिय करती है।

जब हमें किसी वस्तु की आवश्यकता होती है तो हमारे अन्दर एक इच्छा उत्पन्न होती है, इसके फलस्वरूप ऊर्जा उत्पन्न हो जाती है, जो प्रेरक शक्ति को गतिशील बनाती है। प्रेरणा इन 'इच्छाओं और आन्तरिक प्रेरकों तथा क्रियाशीलता की सामूहिक शक्ति के फलस्वरूप है। उच्च प्रेरणा हेतु उच्च इच्छा चाहिए जिससे अधिक ऊर्जा उत्पन्न हो और गतिशीलता उत्पन्न हो। अभिप्रेरणा द्वारा व्यवहार को अधिक दृढ़ किया जा सकता है।

अभिप्रेरणा की परिभाषाएँ

1. फ्रेण्डसन के अनुसार–''सीखने में सफल अनुभव अधिक सीखने की प्रेरणा देते हैं।''
2. गुड के अनुसार–''किसी कार्य को आरम्भ करने, जारी रखने और नियमित बनाने की प्रक्रिया को प्रेरणा कहते है।''
3. लोवेल के अनुसार–''प्रेरणा एक ऐसी मनोशारीरिक अथवा आन्तरिक प्रक्रिया है, जो किसी आवश्यकता की उपस्थिति में प्रादुर्भूत होती है। यह ऐसी क्रिया की ओर गतिशील होती है, जो आवश्यकता को सन्तुष्ट करती है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि अभिप्रेरणा एक आन्तरिक कारक या स्थिति है,जो किसी क्रिया या व्यवहार को आरम्भ करने की प्रवृत्ति जागृत करती है। यह व्यवहार की दिशा तथा मात्रा भी निश्चित करती है।

अभिप्रेरणा के प्रकार (Kinds of Motivation) –अभिप्रेरणा के निम्नलिखित दो प्रकार हैं–

(अ) प्राकृतिक अभिप्रेरणाएँ (Natural Motivation)–प्राकृतिक अभिप्रेरणाएँ निम्नलिखित प्रकार की होती हैं–

(1) मनोदैहिक प्रेरणाएँ– यह प्रेरणाएँ मनुष्य के शरीर और मस्तिष्क से सम्बन्धित हैं। इस प्रकार की प्रेरणाएँ मनुष्य के जीवित रहने के लिये आवश्यक है, जैसे –खाना, पीना, काम, चेतना, आदत एवं भाव एवं संवेगात्मक प्रेरणा आदि।

(2) सामाजिक प्रेरणाएँ–मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह जिस समाज में रहता है, वही समाज व्यक्ति के व्यवहार को निर्धारित करता है। सामाजिक प्रेरणाएँ समाज के वातावरण में ही सीखी जाती है, जैसे –स्नेह, प्रेम, सम्मान, ज्ञान, पद, नेतृत्व आदि। सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति हेतु ये प्रेरणाएँ होती हैं।

(3) व्यक्तिगत प्रेरणाएँ–प्रत्येक व्यक्ति अपने साथ विशेष शक्तियों को लेकर जन्म लेता है। ये विशेषताएँ उनको माता–पिता के पूर्वजों से हस्तान्तरित की गयी होती है। इसी के साथ ही पर्यावरण की विशेषताएँ छात्रों के विकास पर अपना प्रभाव छोड़ती है। पर्यावरण बालकों की शारीरिक बनावट को सुडौल और सामान्य बनाने में सहायता देता है। व्यक्तिगत विभिन्नताओं के आधार पर ही व्यक्तिगत प्रेरणाएँ भिन्न–भिन्न होती है। इसके अन्तर्गत रुचियां, दृष्टिकोण, स्वधर्म तथा नैतिक मूल्य आदि हैं।

(ब) कृत्रिम प्रेरणा (Artificial Motivation)–कृत्रिम प्रेरणाएँ निम्नलिखित रुपों में पायी जाती है–

(1) दण्ड एवं पुरस्कार–विद्यालय के कार्यों में विद्यार्थियों को प्रेरित करने के लिये इसका विशेष महत्व है।

(i) दण्ड एक सकारात्मक प्रेरणा होती है। इससे विद्यार्थियों का हित होता है।

(ii) पुरस्कार एक स्वीकारात्मक प्रेरणा है। यह भौतिक, सामाजिक और नैतिक भी हो सकता है। यह बालकों को बहुत प्रिय होता है, अतः शिक्षकों को सदैव इसका प्रयोग करना चाहिए।

(2) सहयोग–यह तीव्र अभिप्रेरक है। अतः इसी के माध्यम से शिक्षा देनी चाहिए। प्रयोजना विधि का प्रयोग विद्यार्थियों में सहयोग की भावना जागृत करता है।

(3) लक्ष्य, आदर्श और सोद्देश्य प्रयत्न–प्रत्येक कार्य में अभिप्रेरणा उत्पन्न करने के लिए उसका लक्ष्य निर्धारित होना चाहिए। यह स्पष्ट, आकर्षक, सजीव, विस्तृत एवं आदर्श होना चाहिये।

(4) अभिप्रेरणा में परिपक्वता–विद्यार्थियों में प्रेरणा उत्पन्न करने के लिये आवश्यक है कि उनकी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखा जाए, जिससे कि वे शिक्षा ग्रहण कर सके।

(5) अभिप्रेरणा और फल का ज्ञान–अभिप्रेरणा को अधिकाधिक तीव्र बनाने के लिए आवश्यक है कि समय –समय पर विद्यार्थियों को उनके द्वारा किये गये कार्य में हुई प्रगति से अवगत कराया जायें जिससे वह अधिक उत्साह से कार्य कर सकें।

(6) पूरे व्यक्तितत्व को लगा देना–अभिप्रेरणा के द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति से किसी विशेष भावना की सन्तुष्टि न होकर पूरे व्यक्तित्व को सन्तोष प्राप्त होना चाहिए। समग्र व्यक्तित्व को किसी कार्य में लगाना प्रेरणा उत्पन्न करने का बड़ा अच्छा साधन है।

(7) भाग लेने का अवसर देना–विद्यार्थियों में किसी कार्य में सम्मिलित होने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। अतः उन्हें काम करने का अवसर देना चाहिएं

(8) व्यक्तिगत कार्य प्रेरणा एवं सामूहिक कार्य प्रेरणा–प्रारम्भिक स्तर पर व्यक्तिगत और फिर उसे सामूहिक प्रेरणा में परिवर्तित करना चाहिए क्योंकि व्यक्तिगत प्रगति ही अन्त में सामूहिक प्रगति होती है।

प्रभाव के नियम–मनुष्य का मुख्य उद्देश्य आनन्दानुभूति है। अतः मनोविज्ञान के प्रभाव के नियम सिद्धान्त को प्रेरणा हेतु अधिकता में प्रयोग किया जाना चाहिए।

बोध प्रश्न–

- अभिप्रेरणा के प्रकारों पर संक्षेप में लिखिए.....
  .....।

शिक्षा में अभिप्रेरणा का महत्व (Importance of Motivation in Education)– बालकों के सीखने की प्रक्रिया अभिप्रेरणा द्वारा ही आगे बढ़ती है। प्रेरणा द्वारा ही बालकों में शिक्षा के कार्य में रुचि उत्पन्न की जा सकती है और वह संघर्षशील बनता है। शिक्षा के क्षेत्र में अभिप्रेरणा का महत्व निम्नलिखित प्रकार से दर्शाया जाता है–

(1) सीखना (Learning)– सीखने का प्रमुख आधार 'प्रेरणा' है। सीखने की क्रिया में 'परिणाम का नियम' एक प्रेरक का कार्य करता है। जिस कार्य को करने से सुख मिलता है। उसे वह पुनः करता है एवं दुःख होने पर छोड़ देता है। यही परिणाम का नियम है। अतः माता–पिता व अन्य के द्वारा बालक की प्रशंसा करना, प्रेरणा का संचार करता है।

(2) लक्ष्य की प्राप्ति (To Gain the object)–प्रत्येक विद्यालय का एक लक्ष्य होता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति में प्रेरणा की मुख्य भूमिका होती है। ये सभी लक्ष्य प्राकृतिक प्रेरकों के द्वारा प्राप्त होते है।

(3) चरित्र निर्माण (character Formation)– चरित्र–निर्माण शिक्षा का श्रेष्ठ गुण है। इससे नैतिकता का संचार होता है। अच्छे विचार व संस्कार जन्म लेते हैं और उनका निर्माण होता है। अच्छे संस्कार निर्माण में प्रेरणा का प्रमुख स्थान है।

(4) अवधान (Attention) – सफल अध्यापक के लिये यह आवश्यक है कि छात्रों का अवधान पाठ की ओर बना रहे। यह प्रेरणा पर ही निर्भर करता है। प्रेरणा के अभाव में पाठ की ओर अवधान नहीं रह पाता है।

(5) अध्यापन विधियाँ (Methods of Teaching)– शिक्षण में परिस्थिति के अनुरूप अनेक शिक्षण विधियों का प्रयोग करना पड़ता है। इसी प्रकार प्रयोग की जाने वाली शिक्षण विधि में भी प्रेरणा का प्रमुख स्थान होता है।

(6) पाठ्यक्रम (curriculum)–बालकों के पाठ्यक्रम निर्माण में भी प्रेरणा का प्रमुख स्थान होता है। अतः पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों को स्थान देना चाहिए जो उसमें प्रेरणा एवं रुचि उत्पन्न कर सकें तभी सीखने का वातावरण बन पायेगा।

(7) अनुशासन (Discipline)–यदि उचित प्रेरकों का प्रयोग विद्यालय में किया जाय तो अनुशासन की समस्या पर्याप्त सीमा तक हल हो सकती है।

बोध प्रश्न–

- शिक्षा में अभिप्रेरणा के महत्व पर चर्चा कीजिए ?.....
  .....
  ..... ।

अभिप्रेरण करने की विधियाँ (Methods and Devices of Motivation)

कक्षा शिक्षण में प्रेरणा का अत्यन्त महत्व है। कक्षा में पढ़ने के लिये विद्यार्थियों को निरन्तर प्रेरित किया जाना चाहिए। प्रेरणा की प्रक्रिया में वे अनेक कार्य हैं, जिसके फलस्वरूप विभिन्न छात्रों का व्यवहार भिन्न होता जाता है, जैसे–सामाजिक तथा आर्थिक अवस्थाएँ, पूर्व अनुभव, आयु तथा कक्षा का वातावरण आदि सभी तत्व प्रेरणा की प्रक्रिया में सहयोग प्रदान करते हैं। अध्यापक विद्यार्थियों को सीखने तथा अभिप्रेरित करने के लिए निम्नलिखित विधियों का प्रयोग कर सकते है–

(1) खेल (Games)–छात्र उन आनन्ददायक अनुभवों की इच्छा करते हैं, जिनसे सन्तोष प्राप्त होता है। खेलों से सन्तोष प्राप्त होता है। शिक्षक को खेलों द्वारा आनन्ददायक अनुभव देने चाहिए। जिससे विद्यार्थी को सन्तोष मिले। सन्तोषप्रद प्रेरणा ही विद्यार्थी को अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरित करेगी।

(2) रुचियाँ (Interests)–विद्यार्थी जिस कार्य में अधिक रुचि लेता है, उसमें उसकी अधिक अभिप्रेरणा होगी और अभिप्रेरणा से वह कार्य शीघ्र एवं भली–भांति सीखा जा सकेगा। अतः शिक्षक को विद्यार्थियों की रुचियों को पहचान कर तद्नुरूप शिक्षण कार्य करना चाहिए।

(3) सफलता (Success)– अध्यापक को समस्त कक्षा के लिये सफलता के लक्ष्य निर्धारित करने चाहिए, जिनकी प्राप्ति सुगमता से हो सकें। यदि विद्यार्थी का लक्ष्य लाभप्रद है तो वह सफलता प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील होगा और तुरन्त मिलने वाले कम लाभ को छोड़ देगा।

(4) प्रतिद्वन्दिता (competition)–पाठ्यसहगामी क्रियाओं में प्रतियोगिता प्रेरणा का एक विशिष्ट साधन है। विद्यालय में अध्यापक विद्यार्थियों के मध्य प्रतियोगी कार्यक्रमों के माध्यम से प्रेरणा प्रदान कर सकता है।

(5) सामूहिक कार्य (Group Work)–विद्यार्थी अवलोकन और अनुकरण द्वारा सुगमता से सीखता है। इसलिए विद्यार्थी को प्रेरित करने के लिये अध्यापक को सामूहिक कार्यों के आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए, जिसको देखकर विद्यार्थी अनुकरण कर सकें। ऐसे आदर्शों का प्रदर्शन श्रव्य और दृश्य सामग्री के उपयोग से किया जा सकता है। छात्रों को सामूहिक कार्यों की ओर प्रेरित करना चाहिए।

(6) प्रशंसा को सुदृढ़ करना (To Make Rigid the praise More and More)

विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करने में प्रशंसा अधिक प्रभावशाली होती है। प्रेरणा की यह सुदृढ़ता व्यक्तिगत विद्यार्थियों में भिन्न–भिन्न होती है। उचित अवसर पर ही प्रशंसा का प्रयोग करना चाहिए।

(7) पुरस्कार द्वारा उत्साहवर्द्धन (Encouragement)–शिक्षक को विद्यार्थियों का उत्साहवर्द्धन करने के लिये उनके कार्य पर पुरस्कार प्रदान करने चाहिए। पुरस्कार विद्यार्थियों को पढ़ने के लिये उत्साहवर्द्धन में साकारात्मक प्रभाव डालते हैं। शिक्षक को पुरस्कार का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए जिससे विद्यार्थी में प्रेरित होकर स्वतन्त्र रूप से घर पर पढ़ने में रुचि बनी रहे।

(8) ध्यान (Attention)–ध्यान एकाग्रता भी प्रेरणा में सहायक होते हैं। अध्यापक छात्रों का ध्यान एकाग्र कर दूसरे शिक्षण कार्यों में प्रेरित कर सकता है।

(9) सामजिक कार्यों में सहभागिता तथा सहयोग (Participation and co-operation in Social Work)– सहयोग और सहभागिता भी प्रेरणा का महत्वपूर्ण साधन है। सहयोग की भावना पर ही समूहों का निर्माण होता है। सहयोग और सहभागिता द्वारा सम्पूर्ण कक्षा को अध्ययन में व्यस्त रखा जा सकता है।

(10) कक्षा का वातावरण (Environment of class-room)– कक्षा में बाह्य एवं आन्तरिक अभिप्रेरणा दोनों ही आवश्यक होती हैं। वाहय प्रेरणा का सम्बन्ध विद्यार्थियों के बाहय वातावरण से होता है, जबकि आन्तरिक प्रेरणा का सम्बन्ध उनकी रुचियों, अभिरुचियों, दृष्टिकोण और बुद्धि आदि से होता

है। यह प्राकृतिक अभिप्रेरणा होती है। इसके लिये शिक्षण विधि की आवश्यकता का ज्ञान, आत्म प्रदर्शन का अवसर योग्यतानुसार देना चाहिए।

बोध प्रश्न–

- अभिप्रेरण की किन्हीं तीन विधियों की संक्षिप्त चर्चा कीजिये ?.....
  .....।

मूल्यांकन

(1) अभिप्रेरणा से क्या अभिप्राय है? अभिप्रेरणा के प्रकारों पर प्रकाश डालिए।

(2) शिक्षा में अभिप्रेरणा का महत्व बताइए तथा विद्यालय में सीखने की प्रक्रिया को अभिप्रेरित करने के लिये विधियों का सुझाव दीजिए।

सीखने की प्रक्रिया में अभिप्रेरणा की भूमिका (Role of Motivation in Learning process)– सीखने की प्रक्रिया का एक सशक्त माध्यम है। इस प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति जीवन के सामाजिक, प्राकृतिक एवं व्यक्तिक क्षेत्र में अभिप्रेरणा द्वारा ही सफलता की सीढ़ी तक पहुँच जाता है। सीखने की प्रक्रिया में अभिप्रेरणा की भूमिका का वर्णन निम्नलिखित रुप में किया गया है–

- शिक्षक को विद्यार्थियों के समक्ष कार्य से सम्बन्धित समस्त उद्देश्य रखना चाहिए जिससे सीखने की प्रक्रिया प्रभावशाली बन सकें।
- उच्च आकांक्षाएं, स्पष्ट उद्देश्य तथा परिणामों का ज्ञान विद्यार्थी की आत्म–प्रेरणा के लिए प्रोत्साहन का कार्य करते है।
- शिक्षक छात्रों में रुचि उत्पन्न कर ध्यान को केन्द्रित कर देता है जिससे रुचियों के बढ़ने से अभिप्रेरणा में वृद्धि होती है।
- यदि शिक्षक विद्यार्थियों की आयु तथा मानसिक परिपक्वता के अनुरूप उन्हें कार्य दें तो सीखने की प्रक्रिया प्रभावित होगी।
- सीखने के लिए प्रतियोगिताएँ बहुत प्रभावशाली माध्यम है। प्रतियोगिता और सहयोग लोकतान्त्रिक प्रवृत्तियों के विकास के लिये अभिप्रेरणा का मार्ग प्रशस्त करते हैं

इस प्रकार सीखने की प्रक्रिया में अभिप्रेरणा की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

बोध प्रश्न

- सीखने की प्रक्रिया में अभिप्रेरणा की भूमिका अत्यावश्यक है। स्पष्ट कीजिए। .....
  .....।

विद्यालयी व्यवस्था के सन्दर्भ में समुदाय के सक्रिय सदस्यों का अभिप्रेरणा (Motivation of Active Members of Community in Reference of School Management)– विद्यालय व्यवस्था का संचालन एक महत्वपूर्ण विषय है। विद्यालय व्यवस्था का आदर्श स्वरूप प्रदान करने के लिये यह आवश्यक है कि विद्यालय से सम्बन्धित सभी मानवीय संसाधनों का उचित उपयोग किया जाए।

मानवीय पक्ष के उचित कार्य के लिये यह आवश्यक है कि उनको समय–समय पर अभिप्रेरित किया जाय, जिससे अपने कर्तव्य के प्रति उत्साह बना रहे। मानवीय पक्ष की उदासीनता समाप्त करने का प्रभुख साधन अभिप्रेरणा है। इसके कुछ उदाहरण निम्नलिखित है–

समुदाय के सक्रिय सदस्यों का अभिप्रेरण– समुदाय में इस प्रकार के अनेक व्यक्ति होते हैं, जो धन एवं मानव शक्ति से सम्पन्न होते हैं। उन्हें विद्यालय से जोड़ने के लिये विद्यालय कार्यक्रमों में आमन्त्रित किया जाय तथा मुख्य अतिथि का पद प्रदान किया जाय। शिक्षा के महत्व एवं विद्यालय की समस्याओं से अवगत कराया जाय। उन्हें यह बताया जाय कि आपके द्वारा विद्यालय व्यवस्था में सहयोग करने से आपके यश में वृद्धि होगी तथा समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। इस प्रकार के अभिप्रेरण से उनका विद्यालय में सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार समुदाय के अन्य सक्रिय सदस्यों का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। इस कार्य से अधिगम प्रक्रिया में तीव्रता आयेगी।

चर्चा करें–

- विद्यालय विकास में समुदाय के सक्रिय सदस्यों का सहयोग कैसे प्राप्त किया जा सकता है ?
  .....
  ..... ।

ग्राम शिक्षा समितियों का अभिप्रेरण–ग्राम शिक्षा समितियों के अभिप्रेरण का प्रमुख दायित्व शिक्षक एवं शिक्षा विभाग के अधिकारियों का होता है। यदि ग्राम शिक्षा समिति उदासीन है तो इसके लिये मासिक बैठक में शिक्षक द्वारा ग्राम शिक्षा समिति के सदस्यों को बताया जाय कि वह विद्यालय तथा उसके छात्र एवं छात्राएं आपके हैं। अतः आपका दायित्व है कि विद्यालय एवं छात्रों की सम्पूर्ण व्यवस्था पर आप ध्यान दें। ग्राम शिक्षा समिति के उचित सुझावों को स्वीकार करना चाहिए तथा उसके सदस्यों को अपने विचार रखने का पूर्ण अवसर दिया जाना चाहिये। अच्छी ग्राम शिक्षा समिति को पुरस्कार भी प्रदान करना चाहिये। जिससे उसके सदस्यों में सामूहिक रूप से कार्य करने की भावना का विकास होगा तथा वह अपनी आदर्श भूमिका प्रस्तुत करेंगें।

शिक्षित एवं बेरोजगार युवक युवतियों का अभिप्रेरण–अनेक ग्रामों में शिक्षित युवक एवं युवतियाँ बेरोजगारी की स्थिति में होते हैं। ऐसे युवक एवं युवतियों को विद्यालयी व्यवस्था से सम्बद्ध करके छात्रों के अधिगम स्तर को तीव्र बनाया जा सकता है क्योंकि इसमें अनेक प्रतिभाओं से सम्पन्न युवक एवं युवतियाँ सम्मिलित होते हैं। उनकी इस प्रतिभा का उपयोग करके विद्यालयी व्यवस्था एवं छात्रों के अधिगम स्तर को तीव्र बनाया जा सकता है। विद्यालय कायक्रमों में ऐसे शिक्षित बेरोजगारों को पुरस्कार प्रदान किया जाए तथा समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा उनके कार्य की प्रशंसा एवं सराहना करनी चाहिए।

इस प्रकार विद्यालय व्यवस्था का आदर्श रूप स्थापित करने के लिए ग्राम शिक्षा समिति, समाज के प्रतिष्ठित एवं सक्रिय सदस्य एवं शिक्षित बेरोजगारों का सहयोग प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। तभी हम शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकेंगे। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि विद्यालय व्यवस्था एवं अधिगम प्रक्रिया में सामाजिक अभिप्रेरण महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

विचार करें कि –

- शिक्षित एवं बेरोजगार युवक–युवतियों को विद्यालयी व्यवस्था के प्रति कैसे अभिप्रेरित करेंगे ?
  .....
  .....
  ..... ।

मूल्यांकन

1. विद्यालय व्यवस्था के सन्दर्भ में समाज के सक्रिय सदस्यों के अभिप्रेरण का वर्णन कीजिए।

ध्यान (Attention)

शिक्षण बिन्दु

- ध्यान का अर्थ एवं प्रकार
- ध्यान को प्रभावित करने वाले कारक
- बच्चों का ध्यान केन्द्रित करने के उपाय

1. ध्यान का अर्थ– ध्यान के अन्तर्गत मुख्य रूप से मन को नियन्त्रित किया जाता है जिससे व्यक्ति के अध्यात्मिक विकास तथा शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु मन की चंचलता से बाधा उत्पन्न न हो। अवधान (ध्यान) के अर्थ को हम निम्नलिखित परिभाषाओं से पूर्ण रूप से स्पष्ट करते है–

1. **डमविल के अनुसार** ''किसी दूसरी वस्तु के बजाय एक ही वस्तु पर चेतना का केन्द्रीकरण अवधान (ध्यान) है।

- **मार्गन एवं गिलीलैंड के अनुसार** ''अपने वातावरण के किसी विशिष्ट तत्व की ओर उत्साहपूर्वक जागरुक होना ध्यान कहलाता है। यह किसी अनुक्रिया के लिए पूर्ण समायोजन है।''

इस प्रकार ध्यान के अर्थ एवं परिभाषाओं से निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं–

- अवधान एक मानसिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में चेतन मन किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा क्रिया की ओर लगता है। इसमें चेतन मन को सक्रिय होना पड़ता है।
- अवधान में चेतन मन का संयोग आवश्यक है। व्यक्ति का चेतन मन जब तक किसी विषय पर केन्द्रित नहीं होता तब तक उस विषय में उसका ध्यान केन्द्रित नहीं हो सकता।
- अवधान में व्यक्ति का मन एवं शरीर दोनों क्रियाशील होता है।
- अवधान अस्थिर एवं गतिशील होता है।

ध्यान के प्रकार

ध्यान दो प्रकार के होते हैं–

1. ऐच्छिक ध्यान 2. अनैच्छिक ध्यान

ऐच्छिक ध्यान –इसमें व्यक्ति की इच्छा की प्रधानता होती है। वह अपनी इच्छा से, जानबूझकर किसी वस्तु पर चेतना को केन्द्रित करता है जैसे– पढ़ना।

अनैच्छिक ध्यान –बगैर इच्छा पर जब व्यक्ति किसी चीज पर ध्यान देता है तो वह अनैच्छिक ध्यान होता है। जैसे मन लगाकर पढ़ते समय यदि तेज पटाखे की आवाज हो तो न चाहते हुए भी हमारा ध्यान उधर चला जाएगा।

गतिविधि– कक्षा शिक्षण में बच्चों का ध्यान केन्द्रित करने के लिए आप क्या उपाय करेगे। सूची बनाएं .....
.....।

2. ध्यान को प्रभावित करने वाले कारक (Factors of Attention) –ध्यान को प्रभावित करने वाले कारकों को हम दो भागों में बांट सकते हैं –

1. वाह्य कारक (External Factors)

2. आन्तरिक कारक (Internal Factors)

1. वाह्य कारक–अवधान की वाह्य कारक पर्यावरण में विद्यमान रहती हैं। पर्यावरण में उपस्थित कारक जैसे –वस्तु, व्यक्ति अथवा क्रिया व्यक्ति के लिए उद्दीपक का कार्य करती है।

(क) उद्दीपक का आकार (Size of stimulus) –उद्दीपक का बड़ा आकार, या असाधारण आकार हमारा ध्यान जल्दी आकर्षित करती है, जैसे बड़ा पोस्टर, पूर्ण चन्द्रमा आदि।

(ख) उद्दीपक की नवीनता (Novelity of Stimulus) –नई वस्तु, व्यक्ति अथवा क्रिया आदि भी हमें अपनी ओर आकर्षित करती है। जैसे–नए खिलौने, नई पुस्तकें, नई फिल्में आदि।

(ग) उद्दीपक की विचित्रता (Stramgeness of stimulus) –पर्यावरण में कुछ विचित्र प्रकार के उद्दीपक हैं जो व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, जैसे –विचित्र वेशभूषा व्यक्ति आकर्षण का केन्द्र बनता है।

(घ) उद्दीपक की तीव्रता (Intensity of stimulus) –यदि कोई वस्तु अत्यन्त चटकीली होती है तो वह सहज ही व्यक्ति का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती है।

(ड.) उद्दीपक की आवृत्ति (Repetition of stimulus) –जब कोई वस्तु बार–बार दिखाई जाती है तो वह ध्यान आकृष्ट करती है।

(च) उद्दीपक में परिवर्तन (Change in stimulus) –उद्दीपक में अचानक परिवर्तन भी व्यक्ति का ध्यान आकृष्ट करता है, जैसे–शान्ति में एकाएक शोरगुल होना

(छ) उद्दीपक की अवधि (Duration of stimulus) –अधिक समय तक सामने रहने वाला उद्दीपक भी हमारी ज्ञानेन्द्रियों को अपनी ओर आकृष्ट करता है।

(ज) उद्दीपक की स्थिति (Place of stimulus) –उद्दीपक की विशिष्ट स्थिति में होना भी व्यक्ति का ध्यान आकृष्ट करने का कारण होता है जैसे–समाचार पत्र में बॉक्स में छपे समाचार।

(झ) उद्दीपक में विषमता (Contrast stimulus) –उद्दीपक में विषमता भी ध्यान आकृष्ट करती है जैसे–सफेद कपड़े पर काला धब्बा, लम्बे व्यक्ति के साथ नाटा व्यक्ति आदि।

2. आन्तरिक कारक–ध्यान के आन्तरिक कारक व्यक्ति के अन्दर होती है, जो किसी व्यक्ति, वस्तु या क्रिया की ओर ध्यान आकृष्ट करती है। ये कारक है–

(क) आवश्यकताएँ (Needs) –जिन वस्तुओं से व्यक्ति की आवश्यकताएँ पूरी होती है, उनकी ओर उसका ध्यान बरबस चला जाता है, जेसे–भूखे व्यक्ति का खाने की वस्तु पर ध्यान।

(ख) मूल प्रवृत्तियाँ (Instincts) –व्यक्ति की मूल प्रवृत्तियाँ उसे इनसे सम्बन्धित वस्तु अथवा क्रिया की ओर आकृष्ट करती हैं।

(ग) संवेग (Emotions) –व्यक्ति का ध्यान आकृष्ट करने के लिए संवेग की भूमिका प्रबल होती जैसे –माँ का अपने बच्चे के प्रति स्नेह उसे बच्चे की प्रत्येक गतिविधि की ओर आकृष्ट करता है।

(घ) आदत (Habits) – व्यक्ति की आदतें भी उसे अनुकूल वस्तुओं की ओर आकृष्ट करती है। जैसे चाय पीने वाले व्यक्ति का ध्यान चाय की दुकान की ओर आकृष्ट होता है।

(ड.) उद्देश्य या लक्ष्य (Aims or Goals) –यदि कोई वस्तु या क्रिया व्यक्ति के उद्देश्य से मेल खाती है तो व्यक्ति का ध्यान उस ओर चला जाता है, जैसे–यदि किसी बालक का उद्देश्य खिलाड़ी बनना है तो खेल सम्बन्धी जानकारी, प्रदर्शन की ओर उसका ध्यान जल्दी जाता है।

(च) रुचि (Interest) –हमारी रुचि जिन चीजों में होती हैं, उस पर हमारा ध्यान सहज जाता है जैसे–संगीतज्ञ का ध्यान अच्छे गानों की ओर जाता है।

(छ) शिक्षा एवं अनुभव (Education and Experience) – व्यक्ति की शिक्षा एवं उसके पूर्व के अनुभव के कारण उसका ध्यान उससे सम्बन्धित क्षेत्रों की ओर जाता है। जैसे –छोटे बच्चों का ध्यान खिलौनों की ओर जाता है।

3. बच्चों का ध्यान केन्द्रित करने के उपाय

- प्रायः हम सभी देखते हैं कि जिन तथ्यों, विषयों एवं क्रियाओं में शिक्षार्थियों की रुचि होती है, उनके सीखने में उनका ध्यान भी केन्द्रित होता है अतः हमें सर्वप्रथम पढ़ाए जाने वाले विषयों एवं सिखाए जाने वाली क्रियाओं के प्रति रुचि विकसित करनी चाहिए।
- शिक्षा में ध्यान को उपयोगी बनाने के लिए प्रशिक्षु/शिक्षक को चाहिए कि वह सरल शब्दों का प्रयोग करें। कठिन शब्दों से बच्चें का ध्यान बंटता है।
- बच्चों को समझकर उसके अनुरूप शिक्षा देनी चाहिए।
- शिक्षक/प्रशिक्षु को अपने विषय का पर्याप्त ज्ञान हो।
- शिक्षण के समय प्रशिक्षु बच्चों का मनोरंजन अवश्य करें। इससे बच्चे ध्यान केन्द्रित करने लगते हैं और थकते नहीं है।
- पाठ पढ़ाते समय उसके महत्वपूर्ण अंशों को लिखाते रहना चाहिए। इससे बच्चे उच्चारण एवं वर्तनी का ध्यान रखते हैं। इससे शुद्ध लेखन की आदत बन जाती है।
- विषय वस्तु से सम्बन्धित वस्तुओं जैसे –मॉडल, चार्ट, मानचित्र आदि को सम्मिलित करें, इससे बच्चे का ध्यान उस विषय पर केन्द्रित होने लगता है।
- बच्चों की व्यक्तिगत कठिनाइयों को जानकर उन्हें दूर करना।
- पाठ को छोटे–छोटे भागों में विभक्त कर पढ़ाने से बच्चों का ध्यान शीघ्र केन्द्रित होता है।
- समय–समय पर चिकित्सक से बच्चों का निरीक्षण करवाते रहना चाहिए। अस्वस्थ ज्ञानेन्द्रियों से ध्यान भंग होता है।
- शारीरिक शिक्षा एवं शिक्षा में विभिन्न खेलों द्वारा ध्यान का उपयोग किया जा सकता है।

- विभिन्न वस्तुओं का चयन बच्चे की रुचि के अनुसार करना चाहिए, जिससे वह इन वस्तुओं की ओर ध्यान केन्द्रित करता है।
- बच्चों को थकान का अनुभव नहीं होने देना चाहिए, इससे बच्चों में अरुचि उत्पन्न होती है।
- समय–समय पर बच्चों को पुरस्कार देकर या प्रशंसा कर उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए।
- पुराने ज्ञान को नवीन ज्ञान से जोड़ते हुए शिक्षण कार्य करें।
- बच्चों के ध्यान को कैसे जाँचे ?
- बच्चों के ध्यान को जाँचने के लिए प्रशिक्षु/शिक्षक निम्नलिखित क्रिया–कलाप कर सकते हैं–जिससे बच्चे सजग एवं सक्रिय रह सकते हैं–
- पढ़ाते समय बीच–बीच में छात्रों से अचानक प्रश्न पूछें।
- श्यामपट्ट पर कुछ सारहीन शब्दों एवं क्रम भंग अंको को लिखकर दो सेकेण्ड बाद उन्हें मिटाकर बच्चों से सारहीन शब्दों एवं क्रम भंग लिखे गए अंको को दोहरावाएँ। इससे बच्चों के अवधान विस्तार का पता चलता है।
- ऐसे खेल खिलवाना जिसमें ध्यान की विशेष आवश्यकता होती है जैसे–कुर्सी दौड़, सुई–धागा दौड़।
- कक्षा–कक्ष में कुछ स्थूल सामग्री 2–3 सेकेण्ड दिखाकर उसे हटा दे और बच्चों से उन सामग्रियों का नाम पूछें ।
- आप भी सोचें एवं लिखें कि बच्चों के ध्यान को आप कैसे जांचेगे ? ध्यान परीक्षण प्रपत्र बनाएँ–

पुनरावृत्ति बिन्दु

- सीखने की प्रक्रिया में ध्यान का महत्वपूर्ण स्थान है।
- ध्यान में चेतन मन का संयोग आवश्यक है।
- ध्यान दो प्रकार के होते है– 1–ऐच्छिक ध्यान 2–अनैच्छिक ध्यान
- ध्यान को प्रभावित करने वाले दो कारक है–1–वाह्य करक 2–आन्तरिक कारक
- शिक्षण के समय बच्चों का ध्यान आकृष्ट करने में शिक्षक/प्रशिक्षु की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

बोध प्रश्न

- ध्यान से आप क्या समझते हैं ?
- .....।
- ध्यान को प्रभावित करने वाले वाह्य कारक को समझाइए।

  .....।

रुचि (Interest)

शिक्षण बिन्दु

- रुचि का अर्थ, प्रकार
- बच्चों की रुचि का परीक्षण
- बच्चों में रुचि उत्पन्न करने की विधियाँ
- अधिगम में रुचि का महत्व
- ध्यान एवं रुचि का सम्बन्ध

सामान्यतः रुचि का तात्पर्य हमारी पसन्द से होता है। जिस वस्तु में हमारी रुचि होती है, उसमें हमारा ध्यान स्वाभाविक रूप से केन्द्रित हो जाता हैं। यह हमारे मानसिक अनुभवों से सम्बन्ध रखने वाला एक प्रेरक है।

मैक्डूगल के अनुसार ''रुचि दिया हुआ अवधान है और अवधान रुचि का क्रियात्मक रूप है।''

क्रो एण्ड क्रो के अनुसार ''रुचि एक प्रेरक शक्ति है, जो हमें किसी व्यक्ति, वस्तु या क्रिया के प्रति ध्यान देने के लिए प्रेरित करती है।''

रॉस के अनुसार ''जो वस्तु हमारे साथ अत्यधिक सम्बन्धित होती है, उसके प्रति हमारी रुचि होती है।''

इस प्रकार उपर्युक्त अर्थ एवं परिभाषा से निम्नलिखित तथ्य सामने आते है–

- रुचि मनुष्य की मानसिक संरचना है।
- यह जन्मजात एवं अर्जित दोनों होती है।
- मनुष्यों में रुचियों का विकास जीवन पर्यन्त चलता है।
- मनुष्यों की रुचियों में परिवर्तन होता रहता है।
- रुचि सीखने में आने वाली समस्याओं को दूर करती है। जिससे थकावट का अनुभव नहीं होता है।
- हमारी रुचियों का सम्बन्ध हमारी आवश्यकताओं, लक्ष्यों तथा इच्छाओं से होता है।

2–रुचियों के प्रकार (Types of Interest)

(1) जन्मजात रुचियाँ (Inform Interest)

(2) अर्जित रुचियाँ (Acquired Interest)

1. जो रुचि अपने आप ही उत्पन्न होती है और जिसका आधार मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्तियाँ रहती हैं, उसे जन्मजात या नैसर्गिक रुचि कहते हैं जैसे –खाने में रुचि, संग्रह करने में रुचि आदि।
2. वातावरण के प्रभाव से स्वतः या इच्छा द्वारा प्राप्त रुचि अर्जित रुचि कहलाती है। जैसे–पढ़ने, गाने या अभिनय करने में रुचि।

3–बच्चों की रुचि परीक्षण –बच्चों की रुचि का पता लगाने के लिए विभिन्न रुचि परीक्षणों का निर्माण किया जाता है जिसमें उनके विभिन्न रुचियों से सम्बन्धित पद (Item) सम्मिलित होते हैं, जिसका उत्तर उन बच्चों को हाँ' या 'न' के रूप में देना होता है। उनके द्वारा दिए गए उत्तरों की गणना करके हम उन बच्चों की विभिन्न रुचियों का पता लगाते हैं।

आइए जानें

बच्चों की रुचि की जाँच कैसे ?

- बच्चों की शैक्षिक रुचियों की जाँच–जाँच सूची, प्रश्नावली एवं लिखित उत्तरों द्वारा कर सकते हैं।
- मौखिक प्रश्न पूछकर बच्चों की रुचियों की जानकारी
- जाँच सूची के अन्तर्गत–मैग्जीन पढ़ना, खेलना, रेडियो सुनना आदि के द्वारा उनकी क्रियाओं की जाँच,

क्रियाकलाप–बच्चों की रुचि को जानने के लिए रुचि प्रपत्र का निर्माण करिए, उसे बच्चों के बीच बाँट तथा उसके आधार पर उनकी रुचियाँ ज्ञात करें।

शिक्षा के क्षेत्र में रुचि परीक्षणों का उपयोग मुख्यतः निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है –

- छात्रों की रुचियों का पता लगाने के लिए।
- छात्रों की वैयक्तिक भिन्नता का पता लगाने के लिए।
- छात्रों की रुचियों की तुलनात्मक जानकारी के लिए।
- छात्रों का वर्गीकरण करने के लिए।
- छात्रों के व्यक्तित्व का मापन करने के लिए।
- छात्रों को शैक्षिक निर्देशन देने के लिए।
- छात्रों को व्यावसायिक निर्देशन देने के लिए।

छात्रों की रुचियों में उनकी आयु, परिस्थितियों, अनुभवों एवं आवश्यकताओं के आधार पर परिवर्तन होता रहता है, इसलिए किसी समय विशेष पर किसी रुचि परीक्षण द्वारा प्राप्त परिणाम सदैव लागू नहीं किया जा सकता।

बच्चों में रुचि उत्पन्न करने की विधियाँ तथा अधिगम में उनका महत्व

बच्चों को पढ़ाए जाने वाले विषयों एवं सिखाए जाने वाली क्रियाओं में रुचि उत्पन्न करने के लिए प्रशिक्षु को कुछ महत्वपूर्ण बातों पर ध्यान देना आवश्यक है–

- कोई भी विषय पढ़ाते समय बालकों के दृष्टिकोण से परिचित होना आवश्यक है।

- बच्चों की कठिनाई का निवारण सरलता से करने का प्रयत्न करें।
- ध्यान व रुचि केन्द्रित न होने पर किसी अन्य मनोरंजन खेल द्वारा ध्यान आकर्षित करें ।
- जहाँ तक सम्भव हो विषय पढ़ाते समय स्थूल दृश्य–श्रव्य साधनों का प्रयोग करें इससे पाठ रोचक बनता है।
- उपयुक्तम शिक्षण विधियों का प्रयोग करना चाहिए। सामान्यतः शिशुओं के लिए खेल विधि, बालाकों के लिए कार्यविधि, किशोरों के लिए समस्या समाधान विधि और युवकों के लिए व्याख्यान, तर्क एवं वाद–विवाद विधियाँ अच्छी रहती है।
- प्रत्येक पाठ का प्रयोजन होना चाहिए। जब बच्चे पाठ की उपयोगिता समझ जाते हैं तब वे अपनी इच्छा से कार्य करने में तत्पर होते हैं।
- प्रशिक्षु/अध्यापक की सफलता का मूलाधार बालक की रुचि ही है। रुचि पैदा होने पर उद्देश्य की पूर्ति स्वयं हो जाती है।
- शिक्षण के साथ–साथ बच्चें को उनके परिवेश एवं नई–नई चीजों की भी जानकारी दें।
- रुचि के महत्व के साथ उसके विगत अनुभवों का प्रसंग देना चाहिए।
- कठिन और नीरस विषय को सरल एवं रुचिकर ढंग से प्रस्तुत करें।
- कक्षा में बच्चों से अधिक से अधिक सहभागिता करायें।
- रुचि जागृत करने व ज्ञान वृद्धि के लिए बच्चों को भ्रमण पर भी ले जाए।
- बच्चों की आयु के अनुसार रुचिकर कार्य कराने से शिक्षण प्रभावी बनता है।
- थकान होने पर बच्चे को पूर्ण आराम देना चाहिए।
- बच्चों को समय–समय पर पुरस्कारों एवं प्रमाण पत्रों द्वारा प्रोत्साहित करें।
- शिक्षक को स्वयं उत्साहित एवं फुर्तीला होना चाहिए, जिससे बच्चों की शिक्षण में रुचि बनी रहे।
- विद्यालय तथा कक्षा का वातावरण भी बच्चों की कक्षा कार्य में रुचि बनाए रखने में सहायक होती है।
- शिक्षक/प्रशिक्षु का व्यवहार भी बच्चों के प्रति कठोर व दण्डनीय के स्थान पर प्रेम, सहानुभूति और सहयोगपूर्ण होना चाहिए। इससे बच्चे स्वयं रुचि से केाई कार्य करते हैं।

इस प्रकार उपरोक्त विधियों व तरीकों का प्रयोग करते हुए प्रशिक्षु अपनी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को रुचिकर बना सकते है।

ध्यान एवं रुचि का सम्बन्ध (Relationship between Attention and Interest)

ध्यान एवं रुचि में घनिष्ठ संबंध है। व्यक्ति की जिसमें रुचि होती है उसमें उसका ध्यान भी केन्द्रित होता है। जिस वस्तु पर हम ध्यान देने लगते हैं, उसमें हमारी रुचि उत्पन्न होने लगती है।

मैक्डूगल के अनुसार ''रुचि गुप्त ध्यान है–और ध्यान सक्रिय रुचि है।'' इस प्रकार मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि किसी विषय या वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए उसमें रुचि उत्पन्न करना आवश्यक है।

इस प्रकार रुचि तथा ध्यान के सम्बन्ध में तीन प्रमुख मत प्रचलित है–

1. ध्यान रुचि पर आधारित है 2. रुचि ध्यान पर आधारित है 3. ये दोनो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

पुनरावृत्ति बिन्दु

- सीखने की प्रक्रिया में ध्यान के साथ–साथ रुचि भी महत्वपूर्ण है।
- हमारा ध्यान उसी पर केन्द्रित होगा जिसमें हमारी रुचि होगी।
- रुचि वह प्रेरक शक्ति है जो हमें किसी व्यक्ति, वस्तु या क्रिया के प्रति ध्यान देने के लिए प्रेरित करती है।
- रुचि दो प्रकार की होती है –1. जन्मजात रुचि 2.अर्जित रुचि।
- रुचि और ध्यान का घनिष्ठ सम्बन्ध हैं।
- शिक्षा में रुचि एवं ध्यान दोनों की उपयोगिता है।
- बच्चों की रुचि का उपयेाग करके हम उन्हें उचित शिक्षा प्रदान कर सकते हैं।

मूल्यांकन

1–बहुविकल्पीय

दिये गये उत्तरों में सही विकल्प पर सही (✓) का चिन्ह लगाइए–

(क) ध्यान के प्रकार होते हैं–

(अ) 2 (दो) (ब) 3 (तीने) (स) 4 (चार) (द) 5 (पाँच)

(ख) रुचि का सबसे अधिक सम्बन्ध है–

(अ) संवेग से (ब) ध्यान से (स) बुद्धि से (द) इनमें से किसी से नहीं।

2–अतिलघु उत्तरीय –

1. ध्यान को प्रभावित करने वाले कोई दो वाह्य कारक लिखिए।
2. रुचि के प्रकार कौन–कौन से है ?

3– लघु उत्तरीय

1. रुचि और ध्यान में क्या सम्बन्ध हैं ?
2. शिक्षा के क्षेत्र में रुचि का महत्व अपने शब्दों में लिखिए।

4–दीर्घ उत्तरीय

1. आप पढ़ाए जाने वाले विषय अथवा सिखाए जाने वाली क्रियाओं में बच्चों की रुचि एवं अवधान कैसे विकसित करेगे ?

प्रशिक्षु हेतु

1. कक्षा शिक्षण में गणित विषय के प्रति बच्चों की रुचि एवं ध्यान केन्द्रित करने के लिए गतिविधि का निर्माण करिए।

स्मृति (Memory)

मुख्य शिक्षण बिन्दु

- स्मृति का अर्थ
- स्मृति के प्रकार
- अच्छी स्मृति के प्रभावी कारक

अर्थ (Meaning)

प्रायः देखा जाता है कि जब कोई बच्चा किसी बात को आसानी से सीख जाता है, याद रखता है और पुनर्स्मरण कर लेता है, तो अक्सर हम सभी कहते है कि अमुक बच्चे की स्मरण शक्ति अच्छी है। इस प्रकार अच्छी स्मरण शक्ति से हमारा अर्थ सीखना, याद करना तथा पुनःस्मरण है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अचेतन मन में संचित अनुभवों को चेतन मन में लाने की क्रिया को ही स्मृति कहते हैं। जैसे– जब कोई घटना व्यक्ति देखता है तो यह घटना अपने पूर्ण अथवा अंशरूप में उसके अचेतन मन में संचित हो जाती है। किसी कारणवश जब व्यक्ति को इस घटना की याद आती है या उसे याद दिलाई जाती है तो उक्त घटना पुनः उसी रूप में उसके चेतन मन में आ जाती है।

वुडवर्थ के अनुसार– ''स्मृति, सीखी हुई वस्तु का सीधा उपयोग है।''

हिलगार्ड के अनुसार– ''स्मृति, वह मानसिक प्रक्रिया है जिसमें अतीत के सीखे गए ज्ञान, अनुभव या कौशल का पुनः स्मरण किया जाता है।

स्टाउट के अनुसार– ''स्मृति, एक ऐसी आदर्श पुनरावृत्ति है, जिसमें अतीत के अनुभव उसी ढंग और क्रम में जागृत होते है, जिस क्रम में वह पूर्व में उपस्थित थे।''

उपर्युक्त अर्थ एवं परिभाषाओं का यदि हम विश्लेषण करें तो निम्नलिखित बातें उभर कर हमारे सामने आती हैं–

1. स्थायी पूर्व अनुभव स्मृति के स्थायित्व को शक्तिशाली बनाते हैं।
2. स्मृति का कार्य अचेतन मन में एकत्रित ज्ञान को चेतन मन में लाना होता है।
3.अधिगम के द्वारा स्थापित छाप ही स्मृति शक्ति के आधार बनते हैं।

ध्यातव्य बिन्दु– प्रशिक्षु हेतु

अच्छी स्मरण के लिए बच्चों के प्रति समझ

- बच्चों की अपनी दुनिया होती है, उनकी दुनिया में उतरकर उनको देखे, समझे एवं परखें।
- बच्चे जिज्ञासु होते हैं और निरन्तर कुछ न कुछ सीखना चाहते हैं। उन्हें निर्भय परिवेश देकर स्वतंत्र रूप से कार्य करने का मौका दें।
- बच्चों की शरारत को नकारात्मक नजरिए से न देखे, और न ही अपनी सोच के अनुरूप उन्हें ढ़ालना चाहें। हकीकत में बच्चे शरारत नहीं बल्कि कुछ करके देखने, कुछ खोजने, कुछ समझने के उत्साह से भरे होते हैं।

स्मृति कि प्रकार

व्यक्तिगत विभिन्नताओं के कारण सभी व्यक्ति की याद करने, धारण करने तथा पहचानने की क्षमता एक जैसी नहीं होती है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने स्मृति के निम्नलिखित प्रकार निश्चित किए है–

1. अल्पकालिक स्मृति

अल्पकालीन स्मृति उम्र के साथ विकसित होती है। 13 से 17 वर्ष के मध्य इस प्रकार की स्मृति का विकास तेजी से होता हैं किसी तथ्य या सूचना को याद करके पुनः तुरन्त सुना देना तात्कालीक या अल्पकालीन स्मृति कहलाती है। जैसे छोटी कक्षाओं में शिक्षक बच्चों को पहाड़ा या पाठ याद करने को देते हैं और 10 मिनट बाद सुनते हैं। इसका उपयोग छात्रों में प्रोत्साहन वृद्धि हेतु किया जाता है।

2. दीर्घकालीन स्मृति

जब किसी तथ्य या अनुभव को लम्बे समय तक धारण किया जाता है तो उसे दीर्घ कालीन स्मृति कहते है। यह किसी घटना, सूचना या अनुभव का वह पुनः स्मरण है, जो सीख–लेने के पश्चात अनेक घण्टों, अनेक दिनों, अथवा मिनटों तक मस्तिष्क में धारण के रूप में संचित रहता है। इसका मूलभूत आधार अभ्यास है। इसी अभ्यास के आधार पर अल्पकालिक स्मृति को दीर्घ कालीन स्मृति में संचालित किया जाता है। इसके अतिरिक्त स्मृति के अन्य प्रकार भी है जो निम्नलिखित हैं–

1. रटन्त स्मृति

किसी तथ्य को बिना सोचे समझे याद कर लेना एवं आवश्यकता पड़ने पर ज्यो का त्यो प्रस्तुत कर देना रटन्त स्मृति कहलाती है। आज की शिक्षा पद्धति में बच्चों को रटन्त प्रणाली से दूर रखा जाता है।

2. सक्रिय स्मृति– सक्रिय स्मृति में अधिगम सामग्री

इन्हें भी जानें

- स्मृति के प्रमुख चार सोपान होते हैं–
- अधिगम
- धारण
- प्रत्यास्मरण
- अभिज्ञान

उपयुक्तक चारों सोपान के बाद स्मृति अपनी पूर्ण अवस्था में पहुँचती है।

को बोल–बोल कर याद किया जाता है। अनुभवों को इच्छा पूर्वक प्रयास कर पुनः स्मरण करना एवं उसे सही ढंग से प्रस्तुत करना सक्रिया स्मृति है। छात्र इसी स्मृति के द्वारा परीक्षा भवन में प्रश्नों के उत्तर कमियों पर लिखते हैं।

3. निष्क्रिय स्मृति

जब पूर्व अनुभवों को बिना किसी प्रयास के पुनः स्मरण कर लेते हैं। तो उसे निष्क्रिय स्मृति कहते हैं। इससे व्यक्ति बिना बोले मन–मन में विषयवस्तु को दोहराता है। यह स्मृति उच्च स्तर कक्षा एवं प्रौढ़ों के लिए उपयुक्त होती है।

4. तार्किक स्मृति

किसी तथ्य को सोच समझकर तर्क के आधार पर याद करना एवं आवश्यकता होने पर उसे सुना देना तार्किक स्मृति कहलाती है।

5. वास्तविक स्मृति

जब हम याद की गई या सीखी गई बात को कमी भी नहीं भूलते हैं तो वह स्थायी या वास्तविक स्मृति कहलाती है। यह स्थिति परिपक्वावस्था में विकसित होती है। इसमें विषय को क्रमबद्ध रूप में धारण किया जाता है, जिससे पुनः स्मरण करने में आसानी होती है। शिक्षा के क्षेत्र में इस स्मृति को सर्वोत्तम माना जाता है।

क्रियाकलाप (अब आपकी बारी)

आप पढ़ने–पढ़ाने की प्रक्रिया में किस प्रकार की स्मृति का प्रयोग करते हैं ? सोचिए और लिखिए।

गतिविधि

प्रशिक्षु कक्षा– शिक्षण में बच्चों से यह चर्चा करें कि आपको कौन–कौन सी बात आसानी से याद हो जाती है ? बच्चों द्वारा दिए गए उत्तरों में से निम्नलिखित बिन्दु उभरकर सामने आ सकते हैं– पुनः आपस में चर्चा करें–

- जिसमें हमारी रूचि होती है।
- जो विषय सामग्री सरल एवं अर्थ पूर्ण होती है।
- जिसे सीखने सीखाना की विधि या क्रिया रूचिकर होती है।
- जिसे याद करने के बाद विश्राम मिल जाता है।
- जो भयमुक्त वातावरण में सिखाया जाता है।

स्मृति के प्रभावी कारण

अधिगम सामग्री की स्पष्टता, सरलता तथा सार्थकता भी स्मरण को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावति करती है। निरर्थक सामग्री की अपेक्षा सार्थक सामग्री बच्चे को जल्द याद हो जाती हैं।

इस प्रकार स्मृति को अनेक तत्व प्रभावित करते हैं जिसमें निम्नलिखित मुख्य हैं–

1. शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य

स्वस्थ बच्चों की अपेक्षा अस्वस्थ बच्चों की स्मृति कमजोर होती है। इस प्रकार जो बच्चे भय, चिन्ता एवं अन्य मानसिक विकारों से ग्रस्त होते हैं, उनकी स्मृति अच्छी नहीं होती है। इसके विपरीत यदि बच्चों में मानसिक ताजगी है, तत्परता है तो निश्चित रूप से स्मृति प्रक्रिया शीघ्र, सहज, स्थायी एवं सरल ढंग से होगी।

2. प्रेरण

अभिप्रेरित व्यक्ति जल्दी सीखते हैं एवं सीखी हुई सामग्री को लम्बे समय तक धारण करते हैं।

3 रूचि

जिस विषय वस्तु में बच्चों की रूचि होती है उसे वे जल्दी सीखता है। अरूचिकर वस्तुएँ विस्मृत होने लगती हैं। इसलिए कक्षा शिक्षण में रूचि पैदा करना आवश्यक है।

4. सम्बद्धता

वर्तमान से अतीत की घटनाओं को सम्बद्धित कर इतिहास की घटनाओं को सरलतापूर्वक बच्चों को स्मरण कराया जा सकता है। जैसे– अपने गाँव के किसी व्यक्ति को देखकर गाँव से समबन्धित अन्य बातें भी याद आ जाती है।

5. स्मरण विधि

बच्चे स्मरण करने के लिए जिस विधि का उपयोग करते हैं, उसका उसकी याद करने की प्रक्रिया पर असर पड़ता है।

6. शिक्षक का व्यवहार

शिक्षक का बच्चों के प्रति प्रेम एवं स्नेहपूर्ण व्यवहार बालक को याद करने में अनुकूल प्रभाव डालता है।

7. उत्तम वातावरण

शान्तिपूर्ण एवं स्वस्थ्य वातावरण अच्छी स्मृति के लिए सहायक होता है। इसके विपरीत वातावरण स्मृति पर विपरीत प्रभाव डालती है। इस कारण कक्षा शिक्षण रूचिपूर्ण एवं बालकेन्द्रित होने पर पठन–पाठन सरल हो जाता है तथा बच्चे भी सरलता से उसे समझ जाते हैं।

इन्हें भी जानें –

- बच्चों की स्मरण शक्ति को अच्छा कैसे बनाएं
- बच्चों में सीखने की प्रबल इच्छा उत्पन्न करना।
- सीखने के नियमों को ध्यान में रखना।
- याद की हुई विषय वस्तु को बार–बार अभ्यास करवाना।
- नवीन ज्ञान को पूर्व ज्ञान से जोड़कर पढ़ाना।
- स्मरण कराने की सरल एवं रूचिकर विधियों को अपनाना।

पुनरावृत्ति बिन्दु

अच्छी स्मरण शक्ति का अर्थ सीखना, याद करना तथा पुनः स्मरण है।

मनुष्य की स्मरण शक्ति अन्य प्राणियों की अपेक्षा उच्च होती है।

स्मृति दो प्रकार की होती है– 1. अल्पकालीन 2. दीर्घ कालीन

स्मृति को प्रभावित करने वाले कारक है– रूचि, प्रेरणा, सम्बद्धता स्मरण विधि, शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य, शिक्षक का व्यवहार एवं उत्तम वातावरण।

बोध प्रश्न

स्मृति से आप क्या समझते हैं ?

.....

..... ।

बच्चों की स्मरण शक्ति को अच्छा बनाने के तरीके बताएं।

..... ।

विस्मरण का अर्थ एवं परिभाषा

शिक्षण बिन्दु
- विस्मरण का अर्थ
- विस्मरण का महत्व
- विस्मरण का कारण

प्रायः देखा जाता है कि हम किसी वस्तु या घटना को चाहें कितनी ही गहराई से क्यों न याद करें, उसे एक दिन अवश्य भूल जाते हैं इसे ही विस्मरण या विस्मृति कहते है। धारण की असफलता ही विस्मरण है। मनुष्य के सफल जीवन के लिये स्मृति जितनी आवश्यक है, विस्मृति भी उतनी ही आवश्यक है। अच्छी स्मृति का एक महत्वपूर्ण लक्षण व्यर्थ की बातों को भूल जाना भी है।

ड्रेवर के अनुसार– किसी समय प्रयास करने पर भी किसी पूर्व अनुभव का स्मरण करने में असफल होना ही विस्मरण है।

मन के अनुसार– ग्रहण किए गए तथ्यों को धारण न करना ही विस्मृति है।

फ्रायड के अनुसार– विस्मृति की क्रिया के द्वारा हम अपने दुःख देने वाले अनुभवों को स्मृति से निकाल देते है।

विस्मरण का महत्व

विस्मरण का हमारे जीवन में बहुत महत्व है–

- कटु एवं दुःखद अनुभव को भूल जाना हमारे लिए आवश्यक है।
- चिन्ता, द्वन्द्व, भय, निराशा उत्पन्न करने वाली घटनाओं का विस्मरण हो जाने से मनुष्य में नए कार्य करने की इच्छा जागृत होती है।
- यदि व्यक्ति में भूलने की प्रवृति न हो, तो उसका जीना कठिन हो जाय।
- छात्रों की स्मृति की क्षमता सीमित होती है। इसलिए नए विषय को याद रखने के लिए आवश्यक है कि कुछ निरर्थक विषय को भूल जाऐं।
- विस्मरण से व्यक्ति चिन्तामुक्त हो जाता है और मानसिक रोगी होने से बच जाता है।
- विस्मरण से व्यक्ति बेकार की बातों को भूल कर उपयोगी बातों को याद करता है और अपने जीवन की गति को आगे बढ़ाता है। जिससे उनके भावी जीवन में सुधार होता है।
- इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बालक की शिक्षा में विस्मरण का महत्वपूर्ण स्थान है वह विस्मरण करके ही शिक्षा संबंधी नई बातों को सीख सकता है।

विस्मरण के कारण

विस्मरण के कारणों को हम दो भागों में विभक्त कर समझ सकते हैं–

सैद्धान्तिक कारण

सामान्य कारण

सैद्धान्तिक कारण

बाधा का सिद्धान्त

इसके अनुसार यदि हम एक पाठ को याद करने के बाद दूसरा पाठ याद करने लगते हैं, तो हमारे मस्तिष्क के पहले पाठ के स्मृति चिन्हों में बाधा पड़ती है, और पहले पाठ को पुनः स्मरण में बाधा उत्पन्न होती है।

अभ्यास का सिद्धान्त

थार्नडाइक महोदय के अनुसार– विस्मृति का कारण अभ्यास का अभाव है। यदि हम किसी पाठ्य सामग्री का बार–बार अभ्यास नहीं करते हैं, तो उसे सहज ही भूल जाते है।

दमन का सिद्धान्त

प्रायः देखा जाता है कि हम दुखद घटनाओं को याद नहीं रखना चाहते। ये घटनाएं व्यक्ति के चेतन मन से अचेतन मन में चली जाती है। अतः हम उसका दमन करते हैं।

2. सामान्य कारण

समय का प्रभाव– अधिक समय पहले सीखी हुई बात अधिक और कम समय पहले सीखी हुई बात कम भूलती है।

सीखने की दोषपूर्ण पद्धति– यदि शिक्षक बच्चों को सीखाने की प्रक्रिया में दोषपूर्ण विधियों का प्रयोग करता है तो वह शीघ्र ही विस्मृत हो जाती है।

विषय की मात्रा– छोटी घटनाओं या विषय वस्तु की अपेक्षा हम बड़ी घटनाओं या लम्बे पाठ्य सामग्री को शीघ्र भूल जाते हैं।

रूचि, ध्यान व इच्छा का अभाव

जिस कार्य को करने में रूचि, ध्यान एवं इच्छा नहीं होती है उस कार्य को हम उतनी ही शीघ्रता से भूल जाते है।

मानसिक आघात

सिर में आघात या चोट लगने पर उन पर बने स्मृत चिन्ह अस्त व्यस्त हो जाते है। फलस्वरूप व्यक्ति स्मरण की गई बातों को भूल जाता है।

सीखने में कमी– हम प्रायः सीखी हुई बात को शीघ्र और भली प्रकार सीखी हुई बात को विलम्ब से भूलते है।

मादक वस्तुओं का प्रयोग– मादक वस्तु का प्रयोग मानसिक शक्ति को क्षीण कर देता है। जो विस्मृति का कारण बनती है।

विषय का स्वरूप– हमें सरल, सार्थक और लाभप्रद बातें अधिक समय तक याद रहती है। इसके विपरीत हम कठिन निरर्थक एवं हानिप्रद बातों को भूल जाते हैं।

स्मरण न करने की इच्छा

यदि हम किसी बात को स्मरण नहीं रखना चाहते हैं तो हम उसे अवश्य भूल जाते हैं।

ध्यान देने योग्य बातें

हम अपनी विस्मृति को कम भी कर सकते हैं, इसके कुछ सरल उपाय है–

- किसी विषय को याद करते समय उस पर पूर्ण ध्यान दें।
- पाठ को सस्वर बोल–बोलकर याद करें।
- नए ज्ञान को पुराने अनुभवों के साथ सम्बन्धित करके याद करें
- पाठ को समय– समय पर दोहराते रहें।
- अपना लक्ष्य निर्धारित कर पाठ को याद करें।
- शिक्षक का व्यवहार अनुकूल हो।
- प्रार्थना स्थल पर ही सभी बच्चों को गिनती एवं पहाड़े का अभ्यास कराएं, जिससे पुनरावृत्ति होगी और बच्चों को याद रहेगा।

पुनरावृत्ति बिन्दु

- विस्मरण का भी हमारे जीवन में महत्व है।
- विस्मरण का अर्थ भूल जाना है।
- अच्छे स्मरण के लिए विस्मरण का होना आवश्यक है।
- विस्मरण का कारण है– बाधा का उपस्थित होना, दमन का होना, भावात्मक बाधा, समय का प्रभाव, मादक द्रव्यों का सेवन, विषय का स्वरूप आदि।

मूल्यांकन

1. बहुविकल्पीय प्रश्न

दिए गए उत्तरों में सही विकल्प पर सही ( ) का चिह्न लगाइए–

(क) एस0टी0एम0 का पूरा नाम हैं–

(अ) स्थायी स्मृति (ब) सक्रिय स्मृति

(स) स्थायी स्मृति (द) अल्पकालिन स्मृति।

(ख) बाधा का उपस्थित होना कारण है।

(अ) स्मरण का (ब) विस्मरण का

(स) दीर्घ कालीन स्मृति का (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं।

2. अतिलघु उत्तरीय

- दीर्घकालीन स्मृति से आप क्या समझते हैं ?,
- विस्मरण के दो कारणों के नाम लिखिये।

लघु उत्तरीय

- स्मृति के चार सोपान कौन–कौन से है ?
- मानव जीवन में विस्मरण क्यों आवश्यक हैं ?

दीर्घ उत्तरीय

- विस्मृति को कम करने के उपायों को अपने शब्दों में लिखिए।
- स्मृति के अर्थ को स्पष्ट करते हुए उसके विभिन्न प्रकारों को स्पष्ट करिए।

प्रशिक्षु हेतु

- बच्चों की स्मरण शक्ति अधिक से अधिक बेहतर बनाने के लिए आप कौन–कौन से नवीन तरीके अपनाएगें, सूची तैयार करें

सन्दर्भ साहित्य

1. बाल मनोविज्ञान – डॉ0 आर0पी0सिंह
2. शिक्षा मनोविज्ञान – डॉ0 एस0 एस0 माथुर
3. शिक्षा मनोविज्ञान – पी0डी0 पाठक

सांख्यिकी (Statistics)

- सांख्यिकी–अर्थ महत्व एवं आंकड़ों का रेखाचित्रीय निरूपण।
- माध्य, माध्यिका एवं बहुलक

शैक्षिक सांख्यिकी का सामान्य अर्थ है–शिक्षा सम्बन्धी तथ्यों का वर्गीकरण, सारणीयन और अध्ययन।

सांख्यिकी के लिए अंग्रेजी का शब्द है (Statistics) इस शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'Statista' से मानते हैं।

सांख्यिकी की परिभाषा– *''वह विज्ञान जो प्रदत्तों के संकलन, विश्लेषण एवं निर्णयन से सम्बन्धित नियमों का अध्ययन करता है, सांख्यिकी कहलाता है।*

सांख्यिकी का तात्पर्य प्राप्तांको और परीक्षाओं से प्राप्त आंकड़ों आदि प्रदत्तों का संग्रह करना और उन्हें भली प्रकार समझने हेतु सुसंगठित व व्यवस्थित करना है।

टेट (Tate) के अनुसार–'' सांख्यिकी अनुसन्धान का एक उपकरण है, जिसका सम्बन्ध आंकिक तथ्यों (Numerical data) के संग्रह व व्याख्या की विधियों से है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से सांख्यिकी को हम तीन भागों में बांट सकते हैं–

- सांख्यिकी शब्द आंकड़ों के लिए प्रयोग किया जाता है।
- सांख्यिकी ऐसी विधि है, जिसका प्रयोग किसी क्षेत्र या समस्या के बारे में आंकड़े एकत्रित करने को कहते हैं।
- सांख्यिकी शब्द का औसत, प्रतिशत, मध्यमान, माध्यिका, बहुलक तथा प्रामाणिक विचलन आदि सारांशित अंकों के लिए प्रयोग करते हैं।

सांख्यिकी का महत्व आवश्यकता एवं उपयोग (Importance, Need and Utility of Statistics)

1. **सरलीकरण** (simplication)– इसके द्वारा फैले सम्पूर्ण अंकों को सरल रूप से व्यक्त किया जा सकता है।
2. **तुलनात्मक अध्ययन** (comparative studies)– दो समूहों में व्यक्तिगत भेद जानने हेतु तुलनात्मक अध्ययन सांख्यिक की सहायता से करते हैं।
3. **परीक्षाओं का निर्माण** (Construction of Tests)– इसका प्रयोग विभिन्न परीक्षाओं (परीक्षणों) के निर्माण में जरूरी है। बुद्धि परीक्षण, रुचि परीक्षण, विशेष योग्यता परीक्षा के निर्माण में सांख्यिकी का प्रयोग होता है।

4. **परीक्षा के परिणामों की व्याख्या** (Interpretation of Test results)–आंकड़ों की व्याख्या व विश्लेषण सांख्यिकी द्वारा ही होती है। इसके अभाव में परीक्षणों की स्पष्ट व्याख्या करना असम्भव है। इस व्याख्या द्वारा बच्चों की वैयक्तिक भिन्नता, व्यक्तित्व सम्बन्धी दोष, आदि का भी पता चलता है।

5. **सत्यता का बोध** (Understanding of Validity)– परीक्षण जिस योग्यता के पता लगाने के लिए बनाया गया है। वह उस योग्यता का मापन कर रहा है या नही, इसी को वैधता कहते है। जैसे गणित योग्यता का मापन करने वाला परीक्षण यदि बना है तो वो इसका मापन कर रहा है या नही।

6. **विश्वसनीयता का ज्ञान** (Knowledge of Reliability)– परीक्षण की विश्वसनीयता जानने के लिए अनेक सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग करते हैं।

7. **अनुसन्धान कार्य में उपयोग** (Use in Research Work)–अनुसन्धान कार्य में सांख्यिकीय का प्रयोग नितान्त आवश्यक है। कोई भी अनुसन्धान कार्य तब तक सही परिणाम नही दे सकता, जब तक उसके परिणाम की व्याख्या के लिए सांख्यिकी का प्रयोग न किया गया हो।

इस प्रकार सांख्यिकी का जीवन में बहुत उपयोग है।

इसे भी जाने –

सांख्यिकी की सीमाएं–

- प्रयोग की परिस्थिति में समझ कर इसका उपयोग करें।
- सांख्यिकी केवल समूहों का अध्ययन करता है।
- सांख्यिकी पूर्ण रूप से शुद्ध या सत्य नही है।
- सांख्यिकी समस्या का समाधान प्रस्तुत नही करती ।
- सांख्यिकी विधि की पूर्ण जानकारी रखने वाले को ही इसका प्रयोग करना चाहिए।

आवृत्ति वितरणों का सारणीकरण

जैसा कि हमे पता है कि सांख्यिकी दिये गये प्रदत्तों का ही अध्ययन करती है यदि प्रदत्तों की संख्या छोटी है, तोउसे हम सरलता से देखकर ग्रहण कर लेते हैं। परन्तु जब प्रदत्तों की संख्या अधिक होती है तो उस समय उसे ग्रहण करना सम्भव नही होता। इस असुविधा का समाधान करने के लिए प्रदत्तों का सुसंगठित होना आवश्यक है।

आवृत्ति (Frequency) के अनुसार हम प्रदत्तों का सुसंगठन कर सकते हैं।

आवृत्ति वह मान है जो जितनी बार आता है।

इस प्रकार किया हुआ संगठन आवृत्ति वितरण कहलाता है। आवृत्ति वितरण (Frequency Distribution) बनाने के लिए हमें निम्न पदों (Steps) का ध्यान रखना चाहिये–

- वास्तविक प्राप्तांकों का प्रसार क्षेत्र (range) ज्ञात करना चाहिये। प्रसार क्षेत्र वह अन्तर है, जो अधिकतम व न्यूनतम प्राप्तांक के बीच होता है।
- इसके बाद वर्गान्तर (class interval) की संख्या तथा वर्ग की लम्बाई या विस्तार (size of class interval) का निर्णय प्रसार क्षेत्र पर निर्भर करता है। जितना हमारा प्रसार क्षेत्र होगा, उसी के अनुकूल हम वर्ग विस्तार (size of class interval) का चयन करेंगे। वर्ग विस्तार के चयन के लिए कोई निश्चित नियम नही है। हम उसका विस्तार (size) 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 10 आदि कुछ भी ले सकते हैं।
- इसके पश्चात वास्तविक प्राप्तांकों को समुचित वर्ग से सारणीवद्ध किया जाता है। इसकों हम निम्नलिखित उदाहरण द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं :–

सारणी –निम्नलिखित प्राप्तांकों का आवृत्ति वितरण ज्ञात करना–

72	75	77	67	72
81	78	66	86	73
67	82	76	76	70
83	71	63	72	72
61	67	84	69	64

प्रचार क्षेत्र = 86 − 61 = 25

(Range) अधिकतम –न्यूनतम अंक वर्ग विस्तार यहाँ पर अंक 5 चुना।

वर्गान्तर की संख्या = प्रसार क्षेत्र + 1

Number of class-interval) वर्ग विस्तार

यहां पर 25 / 5 +1 = 6

यहां पर वर्गान्तर की संख्या 6 है।

वर्गान्तर (class-Interval)	आवृत्ति खड़ी रेखा के रूप में (Tally Mark)	आवृत्ति संख्या (Number of Frequency)
85 - 89	*I*	1
80 - 84	*IIII*	4
75 - 79	~~*IIII*~~	5
70 - 74	~~*IIII*~~ *II*	7
65 - 69	~~*III*~~	5
60 - 64	*III*	3
		आवृत्ति की कुल संख्या (N)= 25

वर्गान्तर नीचे से आरम्भ करके ऊपर चलना चाहिए। वर्गान्तर रखने के बाद हम वास्तविक प्राप्तांकों को वर्गबद्ध करते चले जाते हैं। जिनके लिए हम खड़ी रेखा का चिन्ह प्रयोग में ला सकते हैं। जो 'टेली मार्क' कहलाता है। वर्गान्तर के अन्दर आने वाली आवृत्तियों को जोड़कर उनके समक्ष रखते हैं। इन आवृत्तियों की संख्या वहीं होगी, जो वास्तविक प्राप्तांकों की संख्या है। आवृत्ति की कुल संख्या को हम N से सम्बोधित करते हैं।

Graphical Representation of Data

आंकड़ों का रेखाचित्रीय निरूपण –आंकड़ों का रेखाचित्रीय या आलेखीय निरूपण अधिक स्पष्ट, अधिक आकर्षक एवं अधिक प्रभावशाली होता है। आलेखों की सहायता से आंकड़े सरल एवं सुबोध बनते हैं एवं रुचिकर होते हैं। आंकड़ों का रेखाचित्रीय निरूपण निम्न प्रकार के आलेखों से किया जाता है–

1–आयत चित्र (Histogram)

2–बारम्बारता बहुभुज (Frequency Polygon)

3–संचयी बारम्बारता या तोरण (Ogive)

आयत चित्र (Histogram) –यह बारम्बारताओं का ग्राफ होता है। आयत चित्र में प्रत्येक वर्ग के लिए एक आयत बनाया जाता है जिसका क्षेत्रफल उस वर्ग की बारम्बारता के समानुपाती होता है। आयत

की चौड़ाई उस वर्ग के वर्ग अन्तराल (class-Interval) के बराबर होती है तथा आयत की ऊंचाई उस वर्ग की बारम्बारता (Frequency) के समानुपाती होती है।

बनाने की विधि – उचित पैमाना मानकर।

(1) x अक्ष (Axis) पर वर्ग लेते हैं।

(2) y अक्ष (Axis) पर वर्ग प्रत्येक वर्ग की बारम्बारता ली जाती है।

स्तम्भाकृति (Histogram) वह रेखा चित्र है, जिसमें आवृत्तियों को स्तम्भों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

उदाहरण– निम्नलिखित सारणी में एक नगर की (10–34) आयु वर्ग की साक्षर स्त्रियों की संख्या दी गई है–

आयु वर्ग	**स्त्रियों की संख्या**
10–14	300
15–19	980
20–24	800
25–29	580
30–34	290
कुल जोड़	**2950**

संलग्न सारणी में दिये गये आंकड़ों को व्यवस्थित करने के लिए एक आयत चित्र बनायें।

उपर्युक्त सारणी को सतत continuous वर्ग अन्तराल वाली बनाने पर–

वर्ग अन्तराल (class-Interval)	**बारम्बारता** (Frequency)
9.5—14.5	300
14.5—19.5	980
19.5—24.5	800
24.5—29.5	580
29.5 —34.5	290
कुल जोड़	**2950**

उपर्युक्त सारणी के आधार पर निर्मित आयत चित्र होगा।

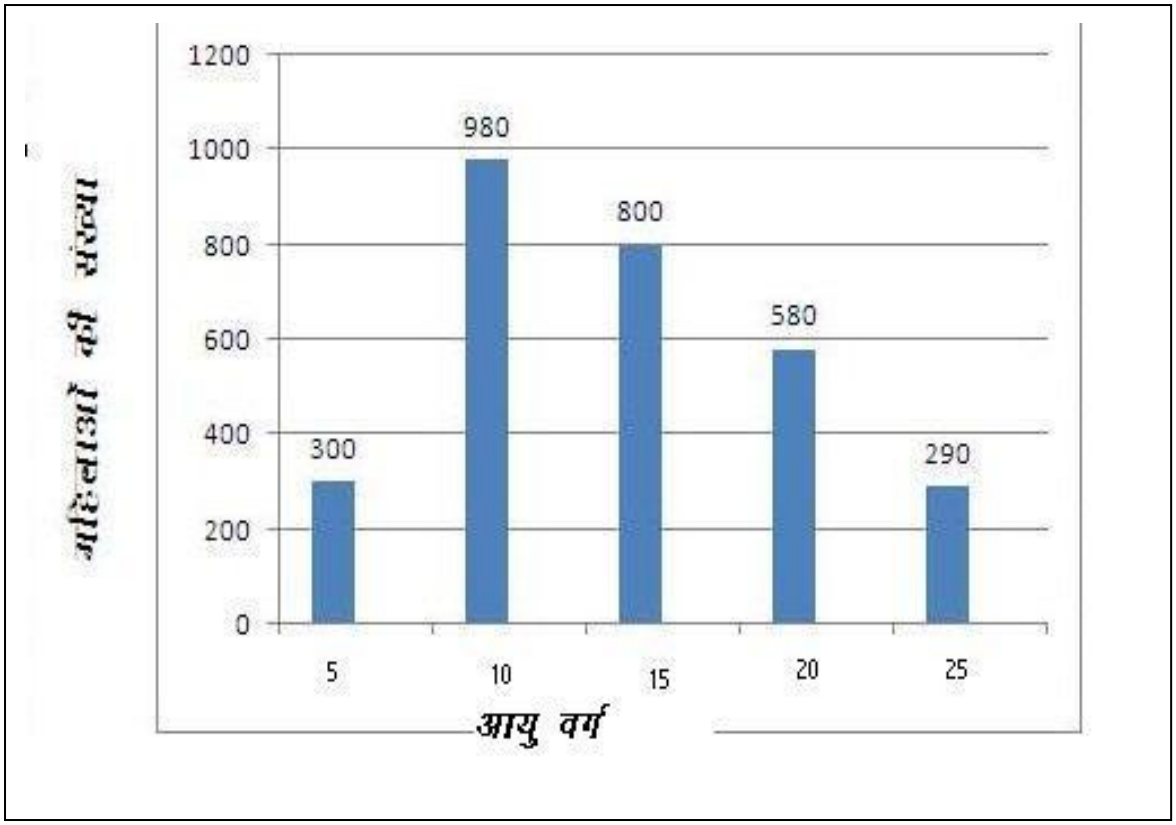

2. बारम्बारता बहुभुज (Frequency Polygon)

अंग्रेजी के पॉलीगन (Polygon) के शब्द का अर्थ है– अनेक रेखाओं वाली आकृति या बहुभुज। अतः हम कह सकते हैं कि बहुभुज वह रेखाचित्र है जिसमें आवृत्तियों का अनेक भुजाओं द्वारा प्रदर्शन किया जाता है।

उदाहरण के लिए दी गई तालिका की सामग्री का आवृत्ति बहुभुज बनाना है।

आवृत्ति बहुभुज बनाने में हमें वर्गान्तरों के मध्य विन्दु की आवश्यकता पड़ती है। साथ ही, हमें प्रारम्भिक वर्गान्तर के नीचे और अन्तिम वर्गान्तर के ऊपर एक–एक वर्गान्तर की कल्पना करनी पड़ती है, जिनकी आवृत्तियों को शून्य मान लिया जाता है। हम अपनी सुविधा के लिए तालिका के निम्न रूप से व्यक्त कर सकते हैं।

प्राप्तांक वर्गान्तर	मध्य बिन्दु	आवृत्तियां (कल्पित)
60–64	62	0
55–59	57	1
50–54	52	1
45–49	47	3
40–44	42	4
35–39	37	6
30–34	32	7
25–29	27	14
20–24	22	6
15–19	17	8
10–14	12	2
5–9	7	0 (कल्पित)

बारम्बारता बहुभुज (Frequency Polygon)

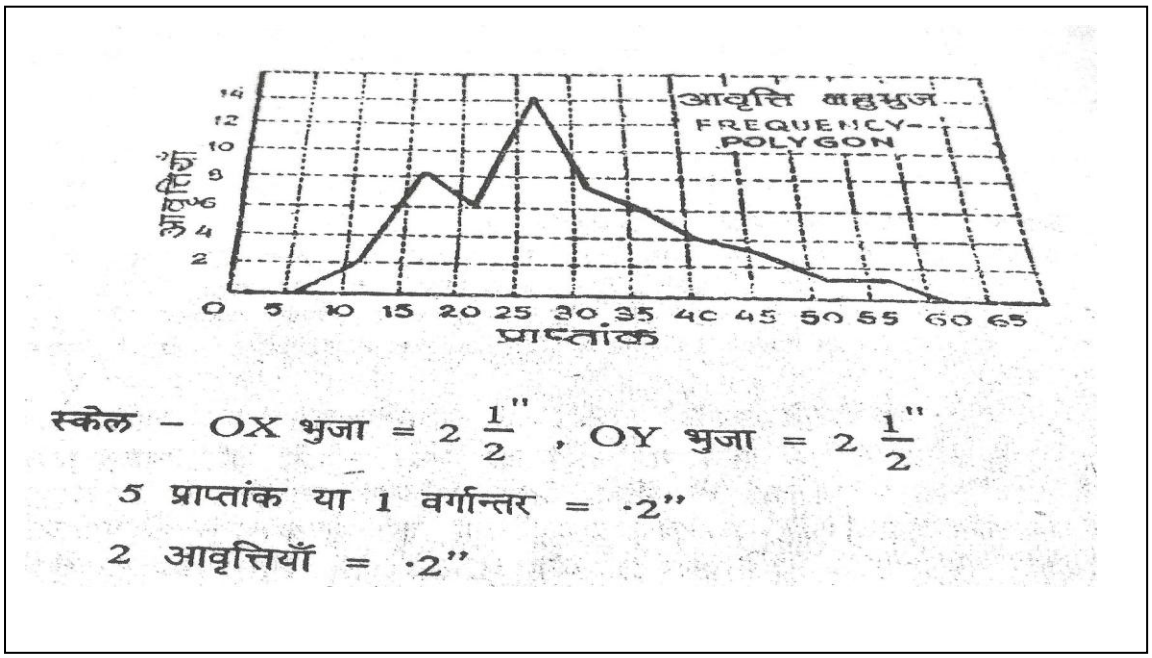

संचयी बारम्बारता या तोरण (ogive) –संचयी आवृत्ति वक्र को रेखाचित्र है, जो संचयी आवृत्तियों (cumulative Frequencies) को प्रदर्शित करता है।

संचयी आवृत्तियां निकालने की विधि–किसी वर्गान्तर (class Interval) की संचयी आवृत्तियां उस वर्गान्तर की और नीचे के सब वर्गान्तरों की आवृत्तियां होती है। नीचे के तालिका में 10–15 वाले वर्गान्तरों की संचयी आवृत्तियां हैं– 2+4=6

नीचे की तालिका की सामग्री से सम्बन्धी संचयी आवृत्ति वक्र बनाने की विधि है–

प्राप्तांकों का आवृत्ति वितरण (Frequency Distribution of Scores)

प्राप्तांक या वर्गान्तर Scores or class-Interval	आवृत्तियां Frequencies	संचयी आवृत्तियां cumulative Frequencies
35–40	1	28
30–35	1	27
25–30	2	26
20–25	8	24
15–20	10	16
10–15	2	6
5–10	4	4

संचयी बारम्बारता या तोरण (ogive)

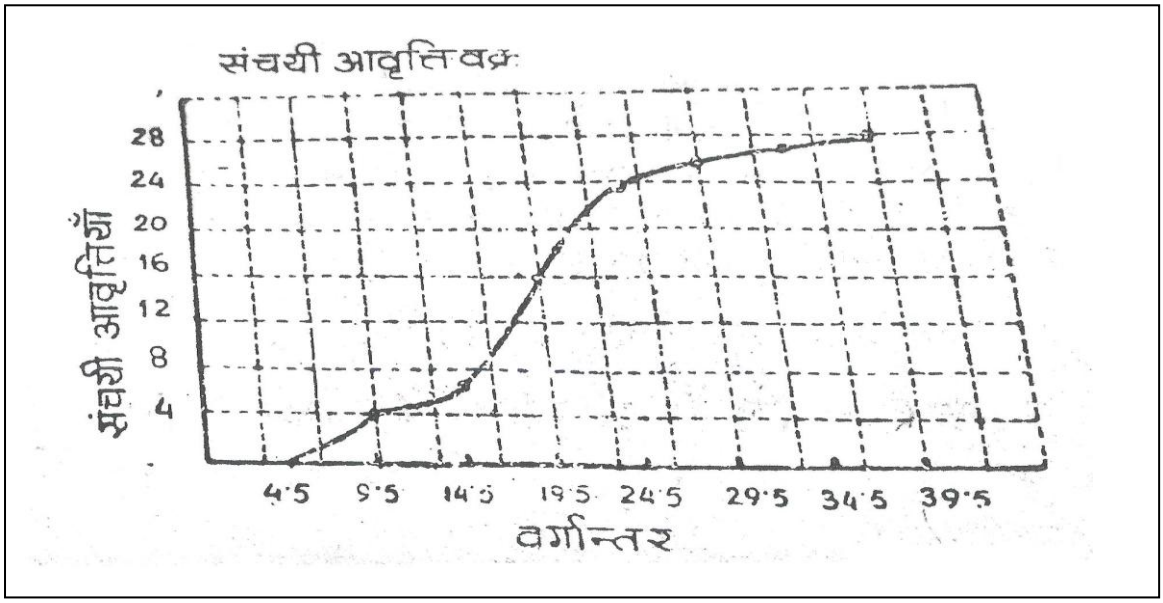

रेखाचित्रीय प्रदर्शन निरूपण का महत्व

1. रेखाचित्र को देखकर यह स्पष्ट पता चल जाता है कि किसी विषय में बच्चों की सामान्य योग्यता क्या है।
2. रेखाचित्र बोधगम्य व सरल होते हैं। जिस प्रकार एक सुन्दर चित्र हमारे ध्यान को आकर्शित करके मौन भाषा में सब कुछ वता देता है। उसी प्रकार रेखाचित्र वस्तुस्थिति का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं। इसका अपना महत्व है।

रेखाचित्रीय प्रदर्शन हमें आवृत्ति वितरण की विशेषतायें को समझने और एक आवृत्ति वितरण का दूसरी से तुलना करने में बहुधा बहुत सहायता करते हैं।

माध्य, माध्यिका, बहुलक (Mean, Median, Mode)

माध्य, माध्यिका, बहुलक ये तीनो केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापक (Measures of Central Tendency) है। केन्द्रीय प्रवृत्ति का अर्थ है, प्राप्तांकों के समूह में एक ऐसा प्राप्तांक होता है, जिसके आस–पास अन्य प्राप्तकों के केन्द्रित होने की प्रवृत्ति होती है। इस प्रवृत्ति के समूह के प्राप्तांकों को केन्द्रीय प्रवृत्ति कहते हैं और इस प्रवृत्ति को केन्द्रीय प्रवृत्ति का मापक कहते हैं।

ये मापक Measures तीन प्रकार के होते हैं–

- **माध्य** (Mean)
- **माध्यिका** (Median)
- **बहुलक** (Mode)

माध्य या मध्यमान– इसे गणित में औसत (Average) भी कहते हैं, उसी को सांख्यिकी में माध्य (Mean) कहते हैं। माध्य निकालने के लिए दिये हुए आंकड़ो के योग में उनकी संख्या से भाग दे दिया जाता है। उदाहरण के लिए 1, 2, 4, 3, 5 का मध्यमान है –

माध्य (Mean) $1+2+4+3+5 = 15/5$

माध्य 3 आया

माध्य दो प्रकार के आंकड़ों से निकाला जा सकता है–

1–अवर्गीकृत आंकड़े (Ungrouped data)

2–वर्गीकृत आंकड़े (Grouped data)

अवर्गीकृत आंकडों का मध्यमान निकालने की विधि

अवर्गीकृत आंकड़े सिलसिलेवार न होकर बिखरे होते हैं। उदाहरण के लिए एक मजदूर पहले, दूसरे तीसरे, चौथे व पांचवे दिन क्रमशः 3, 4, 4, 5, 4, 5 की मजदूरी करता है, उसकी औसत मजदूरी या माध्य हम इस प्रकार निकाल सकते हैं–

$\frac{3+4+4+5+4}{5} = 4$ रु0

अवर्गीकृत आंकड़ों (ungrounped data) का माध्य निकालने का सूत्र है

माध्य (Mean)$M = \frac{(\boxtimes)\text{प्राप्तांको का योग}}{(N)\text{ प्राप्तांकों की संख्या}}$

यहाँ M = माध्य (Mean)

$\boxtimes$ = योग (sum total)

X = दिये हुए प्राप्तांक (scores)

$\boxtimes$ = को सिग्मा कहते हैं, जिसका अर्थ है योग उदाहरण के लिए हिन्दी की परीक्षा में बच्चों का प्राप्तांक 10, 23, 17, 23, व 15 है।

इन प्राप्तांकों का माध्य

$M = \frac{\boxtimes x}{N}$

माध्य $= \frac{10+25+17+23+15}{5} = \frac{90}{5} = 18$

वर्गीकृत आंकड़ों (Grouped data) का माध्य निकालने की विधि–

वर्गीकृत आंकड़े सिलसिलेवार व क्रमबद्ध होते हैं। सांख्यिकी में इसी प्रकार के आंकड़ों का माध्य निकालते हैं इसको निकालने की दो विधियां हैं।

(क) लम्बी विधि (Long Method)

(ख) छोटी विधि (Short Method)

लम्बी विधि का सूत्र है

$M = \frac{\boxtimes FX}{N}$

यहाँ पर M = माध्य (Mean)

☒ = योग (sum total)

F = आवृत्तियां (Frequencies)

छत्र आवृत्तियों का योग (Total of Frequencies)

☒FX = आवृत्तियों व मध्य बिन्दु के गुणनफल का योग

उदाहरण– प्राप्तांको का आवृत्ति वितरण (Frequency Distributionn of Scores)

वर्गान्तर (Class-interval)	आवृत्तियां (Frequencies)
45-49	01
40-44	02
35-39	03
30-34	06
25-29	08
20-24	17
15-19	26
10-14	11
5-9	02
0-4	00

लम्बी विधि द्वारा मध्यमान निकालना

वर्गान्तर class interval	मध्यबिन्दु Mid point (X)	आवृत्तियां Frequencies (F)	आवृत्तियां x मध्य बिन्दु Frequencies x Midpoint (FX)
45.49	47	1	47
40.44	42	2	84
35.39	37	3	111
30.34	32	6	192
25.29	27	8	216
20.24	22	17	374
15.19	17	26	442
10.14	12	11	132
5.9	7	2	0
0.4	2	0	0

N=76 ☒FX=1612

माध्य M मंद = $\frac{\boxtimes FX}{N}$

$=\frac{1612}{76}$

माध्य = 21.21

छोटी विधि द्वारा माध्य निकालना – अधिकतर इस विधि

इसका सूत्र है द्वारा ही माध्य निकालते हैं

माध्य $M = Am + \frac{(\boxtimes FD)}{N} \times Ci$

M = M मंद माध्य

AM = कल्पित माध्य (Assumed Mean)

☒ = योग (sum total)

F = आवृत्तियां (Frequencies)

D = विचलन (Deviation)

N = आवृत्तियों का योग (total of Frequencies)

CI = वर्गविस्तार (size of class-interval)

☒FD = आवृत्ति व विचलन के गुणनफल का योग

उदाहरण– छोटी विधि द्वारा माध्य निकालना

वर्गान्तर class interval	मध्यबिन्दु Mid point	विचलन Deviation (D)	आवृत्तियां Frequencies (F)	आवृत्तियां x विचलन Frequencies x Deviation (FD)
45-49	47	+5	1	+5
40-44	42	+4	2	+8
35-39	37	+3	3	+9
30-34	32	+2	6	+12
25-29	27	+1	8	+8
20-24	22	0	17	0(+42)
15-19	17	-1	26	-26
10-14	12	-2	11	-22
5-9	7	-3	2	-6
0-4	2	-4	0	-0 (-54)
			N=76	☒FD=-12

माध्य के पास का प्राप्तांक = 20.24

इस वर्गान्तर का कल्पित माध्य (AM)=22

वर्गान्तर का आकार (CI)=5

मध्यमान का सूत्र है $AM+\frac{(\boxtimes FD)}{N} \times CI$

सूत्र का प्रयोग करने पर

$M=22+(-\frac{12}{76}) \times 5$

माध्य =21-21

माध्य का प्रयोग किन दशाओं में करते हैं–

- जब प्राप्तांकों का वितरण सामान्य हो।
- जब अधिक विश्वसनीयता व वैधता की आवश्यकता हो।
- जब वितरण में प्रत्येक प्राप्तांक को महत्व देना होता है।
- जब सह सम्बन्ध (corelation) प्रामाणिक विचलन (Standard Deviation) या प्रामाणिक त्रुटि (Standard errer) ज्ञात करना हो।
- माध्य सबसे अधिक निश्चित होने के कारण यह एक विश्वसनीय मापक है।

माध्यांक या माध्यिका (Median)

माध्यिका प्राप्तांको के समूह का वह बिन्दु है, जिसके नीचे समूह के आधे प्राप्तांक होते है और जिसके ऊपर समूह के आधे प्राप्तांक होते हैं।

मध्यांक दो प्रकार के आंकड़ों को निकालते है–

1. अवर्गीकृत आंकड़े (Ungrouped Data)
2. वर्गीकृत आंकड़े (Grouped Data)

अवर्गीकृत आंकड़े का मध्यिका या मध्यांक निकालने की विधि

सूत्र $=\frac{(N+1)th}{2}$ number

N= समूह के प्राप्तांकों का कुल योग

उदाहरण के लिए– निम्नलिखित समूह के प्राप्तांकों की माध्यिका निकालिये।

7,10, 8, 12, 9, 11, 7 (vle odd संख्या)

पहले इन प्राप्तांको को क्रम में रखें।

7, 7, 8, 9, 10, 11, 12

मध्यिका का सूत्र है–Median $=\frac{N+1}{2}$ th number

माध्यिका $=\frac{7+1}{2}=4^{th}$ number

प्राप्तांकों के समूह में चौथी संख्या है–9

माध्यिका = 9

वर्गीकृत आंकड़ो की माध्यिका निकालने की विधि

इसके लिए निम्न सूत्र का प्रयोग करते हैं–

$$\text{माध्यिका (Median)} = \left(\frac{L+[(N/2 - F)}{fm} \right) \times CI$$

यहां पर

Median = माध्यिका

L = माध्यिका वाले वर्गान्तर की वास्तविक निम्न सीमा (Lower limit of Interval containing Median)

N= प्राप्तांक की कुल संख्या (Total number of scores)

F= माध्यिका वाले वर्गान्तर के नीचे की सभी आवृत्तियों का योग (sum of all Frequencies below the interval containing median)

fm= माध्यिका वाले वर्गान्तर की आवृत्तियां (Frequencies of interval containng median)

CI= वर्ग विस्तार (Size of class interval)

उदाहरण

वर्गीकृत आंकड़ों की माध्यिमा निकालना

वर्गान्तर	आवृत्तियां	संचयी आवृत्तियां
45.49	1	76
40.44	2	75
35.39	3	73
30.34	6	70
25.29	8	64
20.24	17	56
15-19	26	39
10.14	11	13
5.9	2	2
0.4	0	0

योग N=76

इस उदाहरण में L=14.5

F=13

fm =26

N=76

CI=5

माध्यिका का सूत्र है $= \frac{L+(N/2-F)}{fm} \quad CI$

इस उदाहरण में माध्यिका $= 14.5 + \frac{76/2 - 13}{26} \times 5$

(Median)

Median = 19-31

(माध्यिका)

मध्यिका (Median) का प्रयोग निम्न दशाओं में करते हैं –

- यह स्पष्ट और निश्चित होने के कारण विश्वसनीय होता है।
- यह समझने में सरल होने के कारण व्यावहारिक कार्यों के लिए सरलता से प्रयोग में लाया जा सकता है।
- यह उन समस्याओं का अध्ययन करना सम्भव बनाता है जो मात्रा या परिमाण में व्यक्त नही किये जा सकते है जैसे बुद्धिमानी (wisdom) या स्वास्थ्या
- यह उन प्राप्तांको का मान निकालने के लिए विशेष रूप से उपयोगी है, जिनका वितरण बहुत असमान्य होता है।
- जब केन्द्रीय प्रवृत्ति शीघ्र मालुम करनी होती है ।
- जब बहुत अधिक शुद्धता व विश्वासनीयता की आवश्यकता नहीं होती।
- जब अंक सामग्री में एक ओर केवल छोटे व दूसरी ओर केवल बड़े अंक होते हैं।

बहुलक या बहुलांक (Mode)– बहुलक जैसा कि नाम से स्पष्ट है दिये हुए प्राप्तांको के समूह में वह प्राप्तांक जो बार–बार आये या बहुधा सबसे अधिक आये, बहुलक कहलाता है।

बहुलक भी दो प्रकार के आंकड़ों से ज्ञात करते हैं

1. अवर्गीकृत आंकड़े (Ungrouped data)
2. वर्गीकृत आंकड़े (Grouped data)

अवर्गीकृत आंकड़े का बहुलक निकालने की विधि

इसमें आंकड़ों को रखकर ही बहुलक का पता चल जाता है उदाहरण के लिए एक समूह के प्राप्तांक है–

10, 11, 11, 12, 13, 13, 15, 15, 15, 14

इसमें 15 का अंक अधिक बार आया है, अतः बहुलक 15 है।

वर्गीकृत आंकड़ों का बहुलक निकालने की विधि–

पहला सूत्र– 3 माध्यिका –2 माध्य

(3 Median) –(2 Mean)

यदि माध्य 21–21 है व मध्यिका 19–31 है, तो

बहुलक का सूत्र =3(19-31) – 2 (21-21)

बहुलक (Mode) = (57.93) – (42.42)

बहुलक = 15-51

दूसरा सूत्र –

बहुलक (Mode) = $L+\left(\frac{FA}{FA+FB}\right) \times CI$

L = बहुलक वाले वर्गान्तर की निम्नतम सीमा।

FA = बहुलक वाले वर्गान्तर के ठीक ऊपर के वर्गान्तर की आवृत्तियां।

FB = बहुलक वाले वर्गान्तर के ठीक नीचे के वर्गान्तर की आवृत्तियां।

CI = वर्ग विस्तार

सूत्र का प्रयोग करके बहुलक निकालते हैं।

वर्गीकृत प्राप्तांकों का बहुलक निकालना

वर्गान्तर	आवृत्तियां	संचयी आवृत्तियां
45-49	1	76
40-44	2	75
35-39	3	73
30-34	6	70
25-29	8	64
20-24	17	56
बहुलक 15-19	26	39
10-14	11	13
5-9	2	2
0-4	0	0
योग–76		

इस उदाहरण में – L = 14.5

FA = 17

FB = 11

CI = 5

बहुलक =14.5 + (17) x 5

(Mode) 17+11

14.5 + 3.03

बहुलक = 17.53

बहुलक का प्रयोग निम्न दशओं में करते हैं –

- जब आवृत्ति वितरण अपूर्ण होता है, उसके निम्नतम व उच्चतम प्राप्तांक ज्ञात नहीं होते।
- जब केन्द्रीय प्रवृत्ति जानने की शीघ्रता हो।
- जब केन्द्रीय प्रवृत्ति में केवल अनुमान लगाना होता है।
- यह समझाने व निश्चित करने में सरल होता है।
- यह औसत को व्यक्त करने के लिए दैनिक जीवन में सबसे अधिक प्रयोग किया जाता है।
- जब निष्कर्ष को सबसे अधिक बार आने वाले प्राप्तांकों पर आधारित करना होता है।

पुनरावृत्ति

- सांख्यिकी का सामान्य अर्थ है शिक्षा सम्बन्धी तथ्यों का वर्गीकरण (classification) सारणीयन (Tabulation) व अध्ययन (Study)
- आंकड़ों के रेखाचित्रीय निरूपण के लिए आयत चित्र (Hiztogram) बारम्बारता बहुभुज (Frequencies Polygon) तथा तोरण (Ogive) का प्रयोग करते हैं।
- रेखाचित्र बोधगम्य व सरल होते हैं।
- केन्द्रीय प्रवृत्ति की मापें हैं– माध्य (Mean) माध्यिका (Median) व बहुलक (Mode)

सारांष –

सांख्यिकी का कार्य प्रदत्तों का संग्रह करना व उसे भली–भांति सुसंगठित व सुव्यवस्थित करके समझने योग्य बनाना है। सांख्यकी की उपयोगिता आंकड़ों के सरलीकरण, तुलनात्मक अध्ययन, परीक्षण परिणामों की व्याख्या, सत्यता का बोध, विश्वसनीयता का ज्ञान व अनुसन्धान आदि कार्यों में है। आंकड़ों के रेखाचित्रीय निरूपण से आंकड़े सरल व सुबोध बनते है। माध्य, माध्यिका व बहुलक केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापक है। माध्य (Mean) का प्रयोग तब करते हैं, जब प्राप्तांको का वितरण सामान्य हो। यह एक विश्वासनीय मापक है। माध्यिका (Median) प्राप्तांकों के मसूह का वह

बिन्दु है जिसके नीचे समूह के आधे प्राप्तांक व जिसके ऊपर समूह के आधे प्राप्तांक होते हैं। बहुलक प्राप्तांको के समूह का वह प्राप्तांक है, जो बार–बार आये। इस प्रकार माध्य, मध्यिका व बहुलक केन्द्रीय प्रवृत्ति की मुख्य मापे है, जिसका बहुत महत्व है।

मूल्यांकन

वस्तुनिष्ठ

1–केन्द्रीय प्रवृत्ति का मापक कौन नही है –

(क) माध्यम (ख) माध्यिका (ग) बहुलक (घ) प्रसार

2– औसत का दूसरा नाम है –

(क) माध्य (ख) माध्यिका (ग) चतुरांश (घ) उपरोक्त कोई नहीं

3– निम्नलिखित प्राप्तांको में बहुलक क्या है –

15, 12, 16, 16, 16 16, 17

4– बारम्बारता बंटन का आयातीय निरूपण कहलाता है –

(1) आयत चित्र (2) बारम्बारता बहुभुज (3) संचयी आवृत्ति वितरण (घ) उपरोक्त कोई नहीं

5– आंकड़ों के प्रकार हैं –

(1) अवर्गीकृत (2) वर्गीकृत (3) अवर्गीकृत व वर्गीकृत (4) उपरोक्त कोई नही

अति लघुउत्तरीय

1. सांख्यिकी को परिभाषित कीजिए ।
2. माध्यिका किसे कहते हैं ?
3. माध्य किसे कहते हैं ?
4. माध्य व माध्यिका में मुख्य अन्तर क्या है ?

लघु उत्तरीय

1. सांख्यिकी की दो उपयोगिता लिखिए !
2. सांख्यिकी की सीमाएं क्या हैं ?
3. आंकड़ों के रेखाचित्रीय निरूपण में हम किन–किन रेखा चित्रों का प्रयोग करते हैं।

दीर्घ उत्तरीय

1. बारम्बारता बहुभुंज किसे कहते हैं स्पष्ट कीजिये।
2. सांख्यिकी के महत्व को संक्षेप में लिखिए।
3. परीक्षण की वैधता से क्या तात्पर्य है।